विषय-सूची

॥ ओ३म् ॥

(सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र)

वर्ष ३२ } मई १९५७. वैशाख २०१४ वि०, दयानन्दाब्द १३३ { अङ्क ३

वैदिक प्रार्थना

अग्निना रयिमश्नवत्पोषमेव दिवेदिवे।
यशसं वीरवत्तमम् ॥ ऋ० १।१।१।३॥

हे महादाता:, ईश्वराग्ने ! आपकी कृपा से स्तुति करने वाला मनुष्य "रयिम्" उस विद्यादि धन तथा सुवर्णादि धन को अवश्य प्राप्त होता है कि जो धन प्रतिदिन "पोषमेव" महापुष्टि करने और सत्कीर्ति को बढ़ानेवाला तथा जिससे विद्या, शौर्य्य, धैर्य चातुर्य, बल पराक्रम और दृढांग धर्मात्मा, न्याययुक्त, अत्यन्त वीरपुरुष प्राप्त हों, वैसे सुवर्ण रत्नादि तथा चक्रवर्ती राज्य और विज्ञानरूप धन को मैं प्राप्त होऊं तथा आपकी कृपा से सदैव धर्मात्मा होके अत्यन्त सुखी रहूं ॥

चेतावनी

इन्द्र विद्यावाचस्पति

इस लेख का शीर्षक चेतावनी है, परन्तु वस्तुतः वह राष्ट्र के कर्णधारों और देशवासियों से एक सानुरोध प्रार्थना है, चेतावनी शीर्षक ध्यान आकृष्ट करने के लिये दिया गया है।

महाकवि इकबाल का एक पद है,
शमशीरो सिना अव्वल,
ताऊसो रबाब आखिर,

राज्यों का आरम्भ खड्ग और खांडे से होता है तो समाप्ति ताऊस और तबले से होती है, इसका अभिप्राय यह है कि राज्यों की नींव वीरता से डाली जाती है, उसका विकास और संरक्षण भी क्षात्र धर्म से होते हैं, और जब क्षात्र धर्म का स्थान सितार तबला और पायल ले लेते हैं तब राज्यों के पतन आरम्भ हो जाते हैं।

सारे विश्व के इतिहास से इस सत्य की पुष्टि होती है। रोम का साम्राज्य जूलियससीजर के समय तक फैलता रहा और शक्तिशाली हो गया, क्योंकि जूलियस सीजर एक प्रतिभाशाली कठोर योद्धा था। इंग्लैंड तक फैली हुई उसकी विजय यात्रायें तलवार और सिना अव्वल का दृष्टान्त थीं। आगस्टस सीजर का समय रोम का समृद्धतम समय समझा जाता है। उस समय अन्य सब प्रकार के वैभव के साथ २ कलाओं की भी खूब उन्नति हुई। ज्यों २ समय व्यतीत होता गया रोमन लोगों में कठोरता घटती गई, और कलाप्रियता और विलासिता में वृद्धि होती गई। परिणाम यह हुआ कि रोम का वह साम्राज्य जिसे पश्चिमी जगत् के राजनीति और कानून का गुरु होने का गौरव प्राप्त हुआ था, हूण आक्रमणकारियों के सामने रेत की दीवार की तरह बिखर गया।

रघु का विशाल राज्य दिग्विजय की धूमधाम से आरम्भ हुआ और अग्निवर्ण के महलों में पायलों की झंझनाहट में समाप्त हुआ। मुगल साम्राज्य की बुनियाद उस बाबर बादशाह ने रखी थी, जो गर्म चोगा पहन और घोड़े पर सवार होकर कन्धार से चला था, और घोड़े पर नदियों को पार करता हुआ दिल्ली के तख्त पर बैठ गया था और उसकी समाप्ति उस कवि बादशाह जफर पर हुई जिसका सबसे बड़ा गुण था कि वह कलाप्रेमी था।

इतनी ऐतिहासिक चर्चा से अनेक पाठकों को यह सन्देह हो सकता है कि मैं कला का विरोधी हूँ या दकियानूसी विचार रखता हूं। यह सन्देह निर्मूल है। मनुष्य समाज के विकास में कला का अपना आवश्यक स्थान है, परन्तु कला एक लता है जिसे बढ़ने और फैलने के लिये सहारे की आवश्यकता होती है। वह सहारा सुव्यवस्थित और सुरक्षित राज्य है। यदि सहारा सुव्यवस्थित और सुरक्षित न हो, तो कलारूपी लता न केवल मुरझा जाती है, समाज के पांव को उलझाने का कारण बन कर उन्नति में बाधक हो जाती है। पहले सुव्यवस्थित और सुरक्षित राज्य और फिर उसके आश्रय पर, उसकी संरक्षा में उसकी सहायिका बन कर कला यह राष्ट्रों के क्रम विकास का नियम है।

राज्यों की स्थापना, वृद्धि और संरक्षा संग्राम युद्ध और संघर्ष से होती है। संग्राम दोनों प्रकार का हो सकता है, हिंसात्मक भी और अहिंसात्मक भी। हिंसात्मक संग्रामों से मनुष्य जाति का इतिहास भरा पड़ा है, अहिंसात्मक संग्राम का सबसे बड़ा दृष्टान्त भारत के स्वाधीनता संग्राम ने उपस्थित किया है। प्रायः समझा जाता है कि संग्राम हिंसक शस्त्रास्त्रों द्वारा किया जाता है जिसमें दोनों पक्ष एक दूसरे को मारते काटते हैं, परन्तु अहिंसात्मक संग्राम के सबसे बड़े सेनानी महात्मा गांधी ने अहिंसात्मक सत्याग्रह को भी संग्राम का नाम दिया है। वह उचित भी था। दो शक्तियों का खुला क्रियात्मक संघर्ष संग्राम कहलाता है। इस

दृष्टि से यद्यपि सत्याग्रह में एक पक्ष मारकाट के साधनों से काम लेता है, और दूसरा सहिष्णुता और तप से, तो भी एक विशेष उद्देश्य से और विशेष समय पर किये जाने के कारण सत्याग्रह संघर्ष भी संग्राम ही है। इस प्रकार विचार करें तो हमें मानना पड़ेगा कि पराधीन देश में न आज तक स्वाधीन राज्य की स्थापना संग्राम के बिना हुई और न हो सकती है।

यहां एक अत्यन्त आवश्यक यह प्रश्न उठता है कि क्या स्वाधीन राज्य की स्थापना के पश्चात् वह देश एकदम संग्राम की परिधि से निकल जाता है? क्या स्वाधीन होते ही उसके लिये संघर्ष समाप्त हो जाता है? उत्तर स्पष्ट है। स्वाधीन होने के पश्चात् संघर्ष का नष्ट होना तो एक ओर रहा, संघर्ष की संभावना पहले से भी सौगुना अधिक हो जाती है। इसके अनेक कारण हैं। जिस राज्य के पिंजड़े को तोड़ कर पराधीन राष्ट्र ने स्वाधीनता प्राप्त की है, वह तो उसका छुपा शत्रु हो ही जाता है, अन्य अनेक पड़ोसी राज्य भी नैसर्गिक शत्रु बन जाते हैं, और उसकी भूमि पर दांत रखने लगते हैं, या कम से कम उसकी स्वाधीन सत्ता से डाह करने लगते हैं।

यदि नवस्वाधीन राज्य छोटा या निर्बल हुआ तो स्वभावतः शक्तिशाली या लोभी देश उस पर प्रभुत्व जमाने के यत्न में लग जाते हैं, और यदि वह शक्तिशाली हुआ तो विरोधी गुट बनाकर उसके मानमर्दन की योजनायें बनाने लगते हैं। इन सब कारणों से वह देश एक शत्रु के पंजे से निकल कर अनेक शत्रुओं के समुदाय से घिर जाता है। फलतः उसके लिये परिमित संघर्ष का जीवन समाप्त होकर विशाल संघर्ष का जीवन आरम्भ हो जाता है। वह विशाल संघर्ष का जीवन तब तक जारी रहता है जब तक वह देश अग्निपरीक्षा में उत्तीर्ण होकर यह न सिद्ध कर दे कि वह वस्तुतः स्वाधीन जीवन का अधिकारी है।

वह दिन चले गये जब राजा और सरदार लोग अपने संगी साथियों को साथ लेकर युद्ध किया करते थे। आज समूचा राष्ट्र आक्रमण करता है, और समूचे राष्ट्र को उत्तर देना पड़ता है। यदि संघर्ष है तो सारा राष्ट्र उसका भागीदार बन जाता है तभी रक्षा की कोई संभावना हो सकती है, अन्यथा सर्वनाश में कोई सन्देह नहीं। इस कारण स्वाधीनता की रक्षा के लिये आवश्यक है कि संघर्ष के दायरे में विद्यमान राष्ट्र का प्रत्येक अंग अपने को आशंकित कठोर परीक्षा के लिये सर्वथा तैयार रखे, अन्यथा नवप्राप्त स्वाधीनता चार दिनों की चांदनी बन कर रह जायगी।

जब इन सब मौलिक सचाइयों को ध्यान में रखते हुए अपने देश की वर्तमान प्रगति पर विचार करते हैं तो मन में बहुत घबराहट पैदा होने लगती है। दो तथ्य तो सर्वसम्मत हैं। पहला यह कि हमने लम्बे संघर्ष और घोर तपस्या द्वारा दासता से मोक्ष पाया है, और दूसरा यह कि स्वाधीनता के साथ ही हमारे पड़ोस में हमारे एक घोर शत्रु ने जन्म ले लिया है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में लिखा है कि पड़ोसी राज्य को अपने राज्य का नैसर्गिक शत्रु मानना चाहिये। फिर वह राज्य कहीं "दामाद" अर्थात् हिस्सेदार भी हो तब तो उसे पूरा "दामाद" शत्रु ही मानना चाहिये। मनुष्य जाति के कल्याण के लिये उचित तो यह था कि कौटिल्य का निर्दिष्ट किया हुआ सिद्धान्त निर्मूल हो जाता और पड़ोसी देश के प्रेमपूर्वक रहने की प्रथा चल जाती परन्तु पाकिस्तान के दृष्टान्त ने सिद्ध कर दिया है कि कौटिल्याचार्य का बतलाया हुआ नियम मनुष्य प्रकृति की निर्बलता पर अवलम्बित होने के कारण वस्तुस्थिति के अधिक समीप है।

यह स्पष्ट है कि सकारण हो या अकारण, पाकिस्तान भारत का शत्रु बना हुआ है। यह भी स्पष्ट है कि वह उस शत्रुता के भाव को कार्यान्वित करने के लिये युद्ध के साधनों को काम में लाना

समुचित मनता है और खुल्लमखुल्ला युद्ध की तैयारी कर रहा है।

यह तो हुई पड़ोसी की दशा! हमारे अन्तर्राष्ट्रीय विरोधियों की भी कमी नहीं। कुछ देश हमारी शान्त समुन्नति से असन्तुष्ट हैं, तो कुछ हमारे प्रधान मन्त्री के यश से जलते हैं। ऐसे भी शक्तिशाली देश हैं, जिन्हें सब कम समृद्ध देशों को अपना पिछलग्गू मानने की आदत पड़ गई है, इस कारण नाराज हैं कि नवोदित गणतन्त्र उनका पिछलग्गू बनने का श्रेय क्यों नहीं प्राप्त करता। मेरा यह अभिप्राय नहीं कि ये सब कोटियों के विरोधी भारत पर चढ़ाई करने की तैयारी कर रहे हैं, परन्तु उनमें से कोई भी ऐसा नहीं जिसके मुंह में स्वयं लड़ कर या किसी अन्य के प्रयत्न से इतना बड़ा पका पकाया कौर आ जाय तो वह मुंह बन्द कर ले। इनमें से कोई प्रत्यक्ष विरोधी है तो कोई परोक्षविरोधी, और यह मानी हुई बात है कि प्रत्यक्ष विरोधी की अपेक्षा परोक्ष विरोधी अधिक भयानक होता है।

अब इस राजनीतिक फलक पर अपने देश की इस समय की मानसिक मनोवृत्ति के चित्र को रख कर देखें तो आश्चर्यमिश्रित खेद होता है। हमारी दशा उस प्रमादी जैसी है जो घर के चारों ओर लगी हुई आग को देखता है, आग२ कह कर चिल्लाता भी है परन्तु यह सोच कर कि अभी मेरे घर से तो आग बहुत दूर है, तसल्ली कर लेता है कि मुझ तक उसका आना सम्भव नहीं, और चादर तान कर सो जाता है। जब आग की ज्वालायें तीव्र होने लगती हैं तब फिर मुंह खोलता है, फिर आग २ चिल्लाता है, और फिर सो जाता है।

संभवतः वर्तमान परिस्थिति के मेरे किये हुए वर्णन से बहुत से पाठक सहमत न होंगे। वे कहेंगे कि संकट की ओर से हमारे नेता सचेत हैं, और न हम सोये हुए हैं। उनका ध्यान मैं इस राजनीतिक सत्य की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं कि इस वास्तविक संसार में केवल संकट के समझने या अनुभव करने से काम नहीं चलता, संकट का मुकाबला करने के लिये समुद्यत रहना सर्वथा अनिवार्य है। संकट का सामना करने के लिये तदनुकूल मनोवृत्ति, और मनोवृत्ति के अनुकूल तैयारी होनी चाहिये।

यह दिखाने के लिये किसी लम्बी युक्ति शृङ्खला की आवश्यकता नहीं कि इन २ वर्षों में हमारी मनोवृत्ति पर संकट के महत्व का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा, हमारी प्रवृत्तियों पर प्रत्यक्ष में दीखने वाले प्रशान्त वातावरण का प्रभाव अधिक है, और चारों ओर से घिरती हुई संकट की घटाओं का प्रभाव कम है, इसका सबसे बड़ा और स्पष्ट प्रमाण तो यह है कि मृदुता की जो प्रवृत्तियां राज्यों का मध्यान्ह हो जाने के पश्चात् उत्पन्न हुआ करती है, वे हमारे देश में स्वाधीनता के आरम्भ में दृष्टिगोचर होने लगी हैं, संगीत नृत्य आदि ललित कलाओं का राष्ट्र के जीवन में अत्यावश्यक भाग है, परन्तु जब तक कोई राष्ट्र उतना शक्ति सम्पन्न न हो जाय कि शत्रु उसकी ओर घूरने का साहस न कर सकें, तब तक ललित कलाओं का स्थान गौण और रक्षात्मक प्रवृत्तियों का स्थान मुख्य होना चाहिये।

हमारी दशा क्या है? गत दस वर्षों के इतिहास पर दृष्टि डालें तो हम देखते हैं कि सर्वसाधारण जनता के लिये प्रामाणिक तौर पर नृत्य, संगीत, नाटक, प्रदर्शन, मुशायिरा, कवि सम्मेलन, तबला, सारंगी आदि को क्षात्रधर्मोचित प्रवृत्तियों की अपेक्षा अधिक महत्व दिया गया है। पुराने समय का मन्तव्य था कि देशरक्षा के लिये युद्ध करना केवल राजपुरुषों या सिपाहियों का काम है, प्रजा का उससे कोई वास्ता नहीं। पूरी तरह नहीं, तो पूरी तरह हम उसका पालन करते हैं। एन० सी० सी० और टेरिटोरियल आर्मी आदि योजनायें बहुत छोटे क्षेत्रों तक परिमित हैं। आम जनता उनसे असपृष्ट है। वह तो शान्ति की चर्चा, और लोकगीतों और गीत नृत्यों के वातावरण में ही पल रही

है। राष्ट्रपति भवन में होने वाले उत्सवों पर दृष्टि डालिये तो उनमें नृत्य संगीत और कविसम्मेलनों की बहुतायत रहती है। मन्त्री लोग नर्तकियों या अभिनेत्रियों, के साथ चित्र देने को उन्नति का चिन्ह मानते हैं। न नर्तकियाँ बुरी हैं, न अभिनेत्रियां, परन्तु जब "श्रेष्ठ" लोग सैनिकवेष में चित्र देने के स्थान पर "नर्तक" वेष में चित्र देना उचित समझेंगे तो स्वभावतः साधारण व्यक्ति पौरुष प्रधान प्रवृत्तियों की अपेक्षा "ताऊसो रबाब" को महिमान्वित मानने लगेंगे।

यदि संसार भर में परस्पर मित्रभाव और शान्ति हो, यदि हमारे पड़ोसी और दूर के देश "शान्तिप्रेमी" 'कलाप्रधान" और "आत्मसन्तुष्ट" हो तब तो हम सोये रहें या "सांस्कृतिक आयोजनों" में मस्त रहे, उसमें कोई हर्ज नहीं। परन्तु जब "अणुबम" हमारे दायें और बायें हों, और अब सीमा की रेखा के पार से दिनरात शमशीर की झन्कार सुनाई दे रही हो तब देश की प्रजा का संग्राम की परिभाषाओं को भूल जाना, और नृत्यकलाओं में विशेषज्ञता प्राप्त करना देश के भविष्य के लिये शुभशकुन नहीं है। ऐसा अनुभव होता है कि हम स्वाधीन होकर भी अभी उसी दासता के वातावरण में जीते हैं जिसमें यह समझा जाता था कि देश के सीमाप्रान्तों की रक्षा करना लार्ड किचनर के उत्तराधिकारियों का काम है। आज भी हम समझते हैं कि या तो हम शान्तिप्रेमी भारतवासियों का कोई शत्रु है ही नहीं, और यदि है भी तो उसका निवारण करना पं० जवाहरलालजी डा० काटजू या उनके महकमे का काम है। समय आयगा तो वे लड़ते रहेंगे, और हम नियमपूर्वक शान्तिमयी प्रवृत्तियों में लगे रहेंगे। यह सारी आत्मप्रतारणा है और इस आत्मप्रतारणा में परोक्ष सहायता देकर राष्ट्र के नेता बहुत भारी भूल कर रहे हैं। संसार की और पड़ोस की संकटमय परिस्थितियों की ओर जनता को अपरिचित या उदासीन रखना देश के भविष्य की दृष्टि से अत्यन्त अमंगलकारी है, यदि युद्ध का संकट आने पर सर्वनाश से बचना अभीष्ट है तो देश के वातावरण में परिवर्तन करने की आवश्यकता है। आवश्यक है कि जनता को संकट का अनुभव कराकर उसके साथ जूझने के लिये तैयार किया जाय न कि शान्ति के खोखले नारों की लोरी देकर सुलाने का यत्न किया जाय।

संभव है, देश के कृत्रिम शान्ति के वातावरण में मेरा यह निवेदन "असमय की रागनी" के समान प्रतीत हो, परन्तु वस्तुतः यही समय की रागनी है, और यही समय का धर्म है। इस समय हम क्रान्ति के रणक्षेत्र में से गुजर रहे हैं, शान्ति की रम्यवाटिका अभी बहुत दूर है।

———

पशु बलि बन्द हो

पशु बलि का वीभत्स दृश्य प्रस्तुत करतेहुए एक यात्री लिखते हैं:—

"कुछ दिन पूर्व देशाटन करते हुये मुझे श्री वैद्यनाथ धाम जाने का अवसर प्राप्त हुआ था। उस दिन विजय दशमी थी। मन्दिर में बहुत से बाहर के यात्री आये हुये थे। हम लोग स्नान आदि से निवृत्त होकर पंडे के साथ मन्दिर को चले। ज्यों ही हमने मन्दिर के प्राङ्गण में प्रवेश किया कि देखा—एक व्यक्ति कुछ विचित्र सी वस्तु केले के पत्ते में लपेटे बड़ी स्वच्छता से लिये जा रहा है। वह ब्राह्मण था। जनेऊ गले में डाले था। माथे पर तिलक लगा था। मेरे पास एक बालक था उसने पूछा—यह क्या चीज है? मैंने स्वयं भी उसे अद्भुत फल समझा। पर ज्यों ही वह निकट से गुजरा मैंने देखा कि वह बकरे की दो टांगें थीं। मैंने चौकन्ना होकर पंडे से पूछा कि वह क्या

है ? उसने कहा 'माई का भोग है।' मन्दिर के विशाल प्राङ्गण में आकर जो देखा उससे मेरी आंखें खुल गई। मैंने अपनी आंखों से जीवित पशु का हनन इतने पास से कभी नहीं देखा था पर वहां सम्मुख मैंने देखा कि यथार्थ नाम खून की नदी बह रही है, सैकड़ों धड़ इधर उधर तड़प रहे हैं और क्षण २ में खटाखट हो रही है। इतना अधिक रक्त एक बारगी ही देखकर और ऐसा भयानक दृश्य देखकर मेरी पत्नी और बालक तो इस तरह भयभीत हुए कि मैंने समझा कि बेहोश हो जायंगे। मैं स्वयं भी बहुत ही विचलित हो उठा, पर तुरन्त मैं एक क़दम और आगे बढ़ गया और ध्यान से वह अभूतपूर्व दृश्य देखने लगा।

मन्दिर का प्राङ्गण बहुत विशाल था। उसमें ५० हज़ार मनुष्य खुशी से समा सकते थे और उस समय १५-२० हज़ार से कम स्त्री पुरुष वहां न होंगे। हठात वेग से खांडा पड़ता और धड़ रक्त का फव्वारा छोड़ता हुआ धरती पर तड़पने लगता। सिर को मन्दिर के चबूतरे पर खड़ा हुआ पुजारी रस्सी के सहारे फुर्ती से ऊपर खींच लेता। ५ आने पैसे, एक नारियल और कुछ फल एक दौने में रखकर सिर के साथ पशु के स्वामी को और देने पड़ते। तब वह स्वयं जाकर सिर को देवी की भेंट कर सकता था। वहां से उसे दौने में प्रसाद मिलता। वह बाहर आकर अपने पशु का धड़ खींचकर एक ओर जरा हट कर बैठ जाता और उसकी खाल उधेड़ना शुरू करता। पंडे लोग भी जुट जाते और वहीं उसके खंड २ करके हिस्से बांट लिए जाते। हिस्से बांटने में खूब तू तू मैं मैं होती थी।

मन्दिर में चारों ओर यही बूचड़ खाना फैला हुआ था। मेरे पैरों में मानो लोहे की कीलें जकड़ दी गई थीं। मैं लगभग ८ या ८॥ बजे मन्दिर में घुसा था और १ बजे तक जब तक कि बधिक अपना काम करता रहा वहीं खड़ा रहा। मेरी पत्नी और साथी लोग हताश होकर एक तरफ हट कर बैठ गये थे। मैंने हिसाब लगाकर देखा, कुल मिलाकर लगभग १२०० बकरे वहां मेरे सामने काटे गये और ३ या ४ भैंसे। भैंसों का सिर काटने, उनके तड़पने, उनके सिर को यूप में फंसाने का दृश्य अत्यन्त भयानक और राक्षसी था। यह अनिवार्य था कि एक ही प्रहार में सिर कट जाय और वह सिर धरती में न गिरने पाये।

मैंने फिर मन्दिर की मूर्ति नहीं देखी। लौट कर स्नान किया और धर्मशाला से सामान उठा स्टेशन की राह ली। उस पाप पुरी में हम लोग अन्न जल ग्रहण न कर सके।

वहां मैंने मछलियों के खुले बाजार देखे। आंगन की एक ओर शिवजी का मन्दिर था और दूसरी ओर देवी का। देवी के मन्दिर का चबूतरा इतना ऊंचा था कि खड़े मनुष्य की गर्दन तक आता था। उसी के सामने एक काष्ठ का यूप खड़ा था जिसमें एक गढ़ा इस भांति किया गया था कि उसमें पशु की गर्दन आसानी से आ सके। गर्दन फंसाकर एक छिद्र द्वारा लोहे के एक सींखचे से उसे अटका दिया जाता था। चबूतरे पर एक आदमी हाथ में एक छींका जैसी वस्तु रस्सी के सहारे पकड़े खड़ा था। बधिक ब्राह्मण था और वह स्नान कर तिलक छाप लगाये, स्वच्छ जनेऊ पहने हाथ में खांडा लिये खड़ा था। प्रत्येक जीव की हत्या करने की उसकी फीस एक आना थी। उस पर इकन्नियों की वर्षा हो रही थी। उसने अपनी धोती में एक पोटली बांध रखी थी, जिसमें वह उन इकन्नियों को डाल रहा था। लोग अपने २ पशुओं को, कोई धकेल कर, कोई कन्धे पर, कोई रस्सी द्वारा खींचकर और कोई मारता हुआ ला रहा था। मैंने भली भाँति देखा—प्रत्येक पशु अपनी भावी मृत्यु को समझ रहा था और भय से कम्पित एवं अश्रु पूरित था। सब पशु आर्त्तनाद कर रहे थे। कटे हुए सिरों के ढेर और फड़कती हुई लाशों को देख मूर्छित से होकर गिर पड़ते थे। प्रत्येक

आदमी की इच्छा पहले अपना पशु कटाने की थी और प्रत्येक व्यक्ति आगे बढ़ अपनी इकन्नी बधिक के हाथ में देना चाहता था। बधिक इकन्नी टेंट में रखता और पशु का स्वामी पशु को यूप के पास धकेलता। बधिक का सहायक फुर्ती से उसकी गर्दन यूप में फंसाकर यूप के छेद में लोहे का सरिया डालता और छीका उसके मुख पर लगा देता।

मन्दिर के एक स्थान पर स्त्रियां दोनों में कुछ अद्भुत घिनौनी वस्तु लिए बैठी थीं। सड़ी हुई लीची को छीलकर रखने से जैसी आकृति होती है वैसी ही वह चीज थी। पूछा तो कहा—आंखें हैं अर्थात् मारे गये पशुओं की आंखें निकालकर एकत्र की गई हैं पूछा कि इनका क्या होता है? कहा—खाते हैं।" वहां से कलकत्ता गया। वहां कालीजी के मन्दिर में भी मैंने न्यूनाधिक रूप में यही वीभत्सता देखी। अन्यत्र भी काली, दुर्गा आदि के मन्दिरों में इसी प्रकार से पशु बध होता है। सुअर, मुर्गे का बलिदान मुख्यतया हिन्दू समाज की नीच जातियों में देखा जाता है।"

इसी प्रकार की नृशंसता का समाचार हमें अमरावती जिलेसे प्राप्त हुआ है। वहां ब्राह्मणोंका नाम लजाने वाले ब्राह्मण पुरोहितों ने ३ बकरों को यज्ञ में जीवित जला कर पुण्य लाभ? प्राप्त किया है।

यज्ञ और पूजन में पशु बलि की घृणित प्रथा नई नहीं है और न यह हिन्दू धर्म और भारतवर्ष तक ही सीमित है। इस्लाम, ईसाइयत आदि २ मतों में भी व्याप्त है और रोम, ग्रीस, मिस्र आदि २ देशों में प्रचलित रही है और है। इस दूषित प्रथा को जो लोग अपनाने का प्रश्रय देते हैं वे इसे पवित्र धार्मिक कृत्य मानते हैं। उन्हें यह अनोखी और वीभत्स नहीं जान पड़ती।

इस प्रथा के प्रचलित होने का ठीक २ समय तो नहीं बताया जा सकता परन्तु यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यज्ञों में पशु बध वैदिक काल से बहुत पीछे चला है। (देखें महाभारत के शान्ति पर्व का अ० ३४०) स्वामी दयानन्द सरस्वती के सत्यार्थप्रकाश के १२ वें समुल्लास के निम्न अवतरण से भी इस स्थापना की सम्पुष्टि होती है :—

"पशु मार के होम करना वेदादि सत्य शास्त्रों में कहीं नहीं लिखा।"

मांस भक्षण, मद्यपान, दुराचार और व्यभिचार जैसी भोग प्रवृत्तियों को समाज द्वारा समादृत कराने तथा जनता की धार्मिक भावना का दोहन करके मौज उड़ाने के उद्देश्य से स्वार्थी पुरोहितों ने वेदों के यज्ञ विषयक स्थलों का मन माना लौकिक अर्थ लगाकर यज्ञों में पशु बलि को मान्य बनाने का पाप किया जो देवी देवताओं के पूजन में भी व्याप्त हुआ। ये सब वाममार्गीय लीलाएं हैं।

यज्ञों में पशु बलि तथा माँस भक्षण को ग्राह्य बनाने के लिए उन स्वार्थियों ने यह कहकर लोगों को उल्लू बनाया कि 'देवताओं के उद्देश्य से यज्ञ प्रसंग में वेदोक्त विधि से जो पशु बध होता है उसका नाम हिंसा नहीं है। अपना पेट भरने के लिये मांस खाने की इच्छा से जो पशु बध होता है वही हिंसा है। वेदोक्त पशु हिंसा में देवताओं के लिये मांसाहुतियाँ समर्पित करना ही मुख्य उद्दिष्ट होता है। हुत शेष माँस का भक्षण करना भी विधि विहित है। अतः शास्त्राज्ञा का रक्षण करने की इच्छा से ही? इस हुत शेष का मांस भक्षण किया जाता है। उन्होंने यह भी बहकाया कि यज्ञ में पशु बलि करने से यजमान और पशु दोनों स्वर्ग को जाते हैं। इस पर चार्वाक सम्प्रदाय वालों ने उपहास से कहा था :—

"यदि पशु को मारने से ही स्वर्ग मिलता है तो यजमान अपने माता पिता को ही क्यों नहीं मार कर हवन कर देते।"

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के १० वें समुल्लास में अपने रोष और विरोध को व्यक्त

करते हुये यह ठीक ही लिखा है :—

"यज्ञ में माँस खाने में दोष नहीं ऐसी पामरपन की बातें वाम मार्गियों ने चलाई हैं। उनसे पूछना चाहिये कि (यदि) वैदिकी हिंसा, हिंसा न हो तो तुझे और तेरे कुटुम्ब को मार के होम कर डालें तो क्या चिन्ता है ?"

यज्ञों में पशु बलि के प्रचलित करने वाले धर्म और समाज के शत्रुओं ने शायद ही यह सोचा हो कि उनके दुष्कृत्यों से मानवता लांछित होगी धर्म कलुषित होगा और लोगों को धार्मिक अनुष्ठानों से घृणा या उपरामता होगी।

मनुष्य पशु पक्षी आदि सभी प्राणी परमात्मा की सन्तान हैं। परमात्मा को सन्तुष्ट करने के लिए उसके आदेशों का पालन करना आवश्यक है। परमात्मा का आदेश है कि हम सब प्राणियों पर दयाभाव रखें और अपने सुधार के लिए सत्कर्म करें। पशुओं की हत्या करने से परमात्मा सन्तुष्ट नहीं होता। निर्दोष पशुओं की हत्या करके स्वर्ग प्राप्ति और फ़र्ज़ी देवताओं के कोप के शमन की आशा रखना वहम, अन्धविश्वास और मूर्खता की पराकाष्ठा है। स्वर्ग तो सज्ञान एवं सत्कर्म से ही प्राप्त होता है धर्म के नाम पर इस प्रकार की हत्याओं से नहीं।

पशु पक्षी आदि जीव अपना कष्ट और अपनी कथा सुना नहीं सकते इसलिए भी वे हमारी दया के अधिक पात्र हैं। हिंसा से परिपूर्ण वर्तमान वातावरण में जहां पेट, पैसे और शौक के लिये हृदय को हिला देने वाला निर्दय पशु बध एवं पशु पीड़न हो रहा हो और सभ्यता कलुषित हो रही हो वहां कम से कम धर्म और ईश्वर को कलुषित होने से बचाना चाहिए। शृंगार के लिए युरोप की स्त्रियां जिन सुन्दर पक्षियों के पर टोपी में रखती थी उनकी नसल का अन्त हो गया। वे सुन्दर पक्षी अब युरोप में हैं ही नहीं। लन्दन में एक व्यापारी ने एक वर्ष में ३० लाख उड़ने वाले। ८० हज़ार पानी के और ८० हजार अन्य पक्षियों का केवल परों के लिए बध करवाया। विलायत के एक नगर में ३ दिन में २४ लाख लावा मार कर एक बार लन्दन भेजे गये थे।

पशु बलि धर्म नहीं है, अधर्म है। इससे हृदय में ग्लानि रोष और कटुता उत्पन्न होती है। धर्म हृदय की शान्ति और शोभा है, पशु बलि परमात्मा वा देवता के कोप के शमन का मूर्खता पूर्ण उपाय है। धर्म वह है जिसके द्वारा ईश्वर की बुद्धि पूर्वक पवित्र पूजा उपासना की जाती और अपना सुधार एवं उत्थान किया जाता है। परमात्मा को हमें अपने सद्गुणों एवं सत्कर्मों की ही भेंट चढ़ानी चाहिये यही सच्ची बलि है।

धर्म प्रचार

धर्म प्रचार सरल कार्य नहीं। अच्छी तरह निभाने के लिए अनेक साधनों को जुटाना पड़ता है। अब तक आर्य समाज ने मौखिक प्रचार पर ही अधिक बल दिया है तदर्थ उसने कतिपय प्रचारकों की सेवा प्राप्त करके उनको स्थान २ पर इस कार्य पर लगाया है। यह ठीक है कि आर्य समाज के प्रचारक बड़ी लगन से अपना कार्य कर रहे हैं परन्तु एक तो उनकी संख्या इतनी कम है कि उनका प्रभाव अभी तक भारत जैसे विस्तृत देश में अनुभव गोचर नहीं हो सका दूसरे उनकी प्रचार शैली में उस मृदुता, सहानुभूति, प्रेम, तथा तप त्यागादि भावों का भी सम्मिश्रण नहीं हुआ जिनके कारण प्रचार का कार्य स्थायी गंभीर तथा महत्त्वपूर्ण सिद्ध होता है। ऐसी दशा में यह सोचना अत्यावश्यक है कि धर्म प्रचार के किन उपयोगी साधनों को हम वर्त्तमान समय और अवस्थाओं में काम में ला सकते हैं।

स्कूलों; पाठशालाओं को भी प्रचार का साधन बनाया जा सकता है। आर्य समाज ने इस साधन को जुटाकर अनेक संस्थाएँ कायम कीं परन्तु थोड़े समय में ही ये सब संस्थाएं

साधन के स्थान में साध्य बन गई और उनके द्वारा प्रचार का जो कार्य हो सकता था वह प्राय; रुक गया। आर्य समाज के सामने अब यह प्रश्न उपस्थित हो गया है कि इन संस्थाओं के विषय में क्या किया जावे? जीवित व्यक्ति अपनी परिस्थिति के अनुसार बदलता रहता है। जीवित जातियां भी इसी तथ्य के अनुसार अपना व्यवहार करती हैं। अतः यदि एक समय के साधन कार्य संपादन के लिये उपयोगी प्रतीत नहीं होते तो उनको तुरन्त बदल देना चाहिये। उनके स्थान पर दूसरे साधनों से काम लिया जा सकता है। श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती ने इस दिशा में हमारा मार्ग प्रदर्शन किया है। उन्होंने पाठशालाएं खोलीं परन्तु जब उन्हें अनुभव हुआ कि उन पाठशालाओं से अपेक्षित लाभ नहीं होता तो उन्होंने उन्हें बंद कर दिया। ईसाई मिशन का उदाहरण हमारे सामने है।

आर्यसमाजको अपनी शक्ति स्कूलों के स्थानमें मुख्यतया चिकित्साद्वारासेवा प्रचारमें लगानीचाहिए, और अनेक स्थानों पर चिकित्सालय खोल देने चाहिए। इनमें धर्मात्मा वैद्यों को नियत करके पीड़ित मनुष्यों को रोग मुक्त करके अपने प्रचार और प्रसार की संभावनाएं बढ़ानी चाहियें। शिक्षा संस्थाओं में भी संस्कृत पाठशालाओंको प्रमुखता देनी चाहिये।

धर्म प्रचार का एक और भी अत्यन्त उपयोगी साधन है जिससे आर्य समाज ने यथेष्ट रूप से काम नहीं लिया। यह साधन है धार्मिक साहित्य का विस्तृत वितरण। इस दिशा में ईसाई मिशन से बहुत कुछ सीखा जा सकता है।

सार्वदेशिक सभा के पास ऐसी बहुत सी पुस्तकें हैं जिनको सर्व साधारण के भीतर बांटा जा सकता है। अंग्रेजी पढ़े लिखों में अंग्रेजी पुस्तकें तथा अन्यों में हिन्दी भाषा के धार्मिक साहित्य को जितना अधिक बांटा जायेगा उतनी ही धर्म प्रचार में सहायता मिलेगी। प्रत्येक प्रदेशीय आर्य प्रतिनिधि सभा तथा आर्य समाज को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिये।

उनको अपने पास इस प्रकार अच्छा साहित्य इकट्ठा रखना चाहिये जो जनता में नाम मात्र के मूल्य पर बांटा जा सके। स्कूलों और कालिजों के छात्रों के हाथ में वर्ष में कम से कम एक बार अवश्य ऐसी पुस्तकें पारतोषिक के रूप में रखनी चाहिये जो उनको धार्मिक दृष्टि से ऊंचा उठाने वाली हों। इस कार्य में धनी आर्यजन अधिक भाग ले सकते हैं। दान के अवसरों पर वे साहित्य प्रचार के निमित्त भी दान दें जिससे उसके द्वारा उपयोगी साहित्य बांटा जाय। सार्वदेशिक सभा अच्छे साहित्य के सम्बन्ध में उनकी सहायता कर सकती है। अच्छे साहित्य के निर्माण और प्रकाशन की दिशा में भी सभा प्रयत्नशील है। यह सब कुछ होते हुए हमें यह अनुभव होना चाहिए कि अच्छा साहित्य बांटा हुआ अच्छे परिणाम पैदा करता है।

आणविक किरण

पिछले दिनों प्रेसीडेन्ट आइज़न हावर ने अणु बमों के परीक्षणों को जारी रखने के पक्ष में बोलते हुये कहा था कि वैज्ञानिकों के अत्यन्त गंभीर और उत्तरदायित्वपूर्ण निर्णय के अनुसार इन परीक्षणों से मानव जाति के स्वास्थ्य की हानि न होगी। उन्होंने अपने पक्ष के समर्थन में नेशनल अकेडमी आव साइन्स का प्रामाणिक निर्णय भी उद्धृत किया था।

१३ जून के न्यूयार्क टाइम्ज ने नेशनल अकेडमी आव साइन्स की जेनेटिक (प्रजनन) कमेटी की रिपोर्ट प्रकाशित की है जिसको यह कार्य सौंपा गया था कि आणविक किरणों के प्रसार से शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है वह इस विषय पर रिपोर्ट दे। रिपोर्ट का आवश्यक भाग इस प्रकार है: -

"वैज्ञानिक जन आणविक किरणों को मानव के भविष्य के लिए खतरा बताते हैं। ज़रा सी

भी आणविक किरण उससे प्रभावित मनुष्य की सन्तानों के लिये हानिकर सिद्ध हो सकती है। इनके प्रयोग में कमी होनी चाहिए। इससे भावी सन्तति की प्रजनन शक्ति को बड़ा धक्का लगता है। किरणों की अधिक काल तक रहने वाली प्रक्रिया से मृत्यु संख्या के बढ़ने और जन्म संख्या के घटने की आशंका है और वह समय आ सकता है जबकि समष्टि रूप से जनसंख्या का ह्रास हो जाय।"

सिडनी कोरेइस ने 'दी न्यूलीडर' में लिखते हुये प्रेसीडेन्ट महोदय की स्थापनाओं का जोरदार खन्डन किया है और बताया है कि वे स्थापनाएं नेशनल अकाडमी आव साइन्स की नहीं हैं अपितु उनके अपने परामर्श दाताओं की हैं।

राजनैतिक चुनाव

राजनैतिक चुनावों के परिणाम उन विचारशील व्यक्तियों के लिये बड़ा मानसिक भोजन उपस्थित करते हैं जो तथ्यों को नाप तोलकर उनसे सुनिश्चित परिणामों को निकालने की सामर्थ्य रखते हैं।

यद्यपि केरल और उड़ीसा को छोड़कर अन्य प्रान्तों में कांग्रेस को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ है तथापि अपवादों को छोड़कर सामूहिक रूप से उसकी साख और प्रतिष्ठा को भी धक्का लगा है जिसने कांग्रेस के कर्णधारों को हवा के रुख को देखने समझने निश्चिन्तता की नींद को भंग करके आत्म निरीक्षण एवं गृह संशोधन पर विचार करने के लिए विवश कर दिया है।

कांग्रेस के वर्चस्व को क्षति पहुंचाने वाले कारण जिन्हें जन सामान्य अपनी सामान्य दृष्टि से देखता है इस प्रकार है:—

१—जीवन निर्वाह की अनिवार्य वस्तुओं में मुनाफाखोरी का अन्त न होना वा उसकी रोकथाम न होना।

२—वस्तुओं के मूल्य का निरन्तर बढ़ते जाना।

३—कानून और व्यवस्था का बिगड़ना।

४—अधिकांश अयोग्य मन्त्री मंडलों के हाथों में शासन की बागडोर का रहना।

स्वार्थी कांग्रेस जनों का दिन प्रतिदिन के शासन में हस्ताक्षेप होना। पदलोलुपता के वशीभूत होकर संघर्षों का व्याप्त हो जाना।

६—शासन में भ्रष्टाचार और पक्षपात का व्याप्त होजाना और उसका खर्चीला तथा आडम्बर पूर्ण बन जाना।

७—लोकमत को प्रभावित करने वाले कांग्रेस जनों में भग्न हृदयता का व्याप्त हो जाना।

८-शिक्षा और संस्कृति के स्तर का गिर जाना।

देश का पुनर्निर्माण जिन नमूनों पर हो रहा है वे नमूने विचारशील प्रजा के लिये भय और आशंका से परिपूर्ण हैं। भारत का कल्याण भारतीय आदर्श के व्यवहार और रक्षण से ही सम्भव हो सकता है।

आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति के सुधार के लिये राजकीय स्तर पर गोवध जैसे जघन्य व्यापार का जारी रहना, लोगों की प्रवृत्ति को मांस भक्षण की ओर प्रेरित करना, सांस्कृतिक सतान निरोध की उपेक्षा पूर्वक कृत्रिम साधनों द्वारा संतान निरोध एवं कामुकता का प्रोत्साहित किया जाना विवाह की पवित्रता और समाज के आधार स्तम्भ परिवार की महत्ता के नष्ट भ्रष्ट हो जाने की अवस्थाओं का उत्पन्न हो जाना, धार्मिक तत्वों की अवहेलना युक्त त्याग प्रधान दृष्टिकोण का विलासितामय लौकिक दृष्टिकोण में परिवर्तित किया जाना आदि २ ऐसे कार्य हैं जिनसे न केवल कांग्रेस का ही अपितु देश का भविष्य भी अन्धकारमय देख पड़ता है।

कांग्रेस की शक्ति का कारण उसके दृष्टिकोण का भारतीय था जो अब लुप्त हो रहा है।

श्री पं० रामचन्द्रजी देहलवी का अभिनन्दन

आर्य समाज हापुड़ (मेरठ) ने राम नवमी के पुण्य पर्व के दिन एक विशेष समारोह का आयोजन करके श्रीयुत पं० रामचन्द्र जी देहलवी का उनकी ७५ वीं वर्षगांठ के अवसर पर सार्वजनिक अभिनन्दन किया और उन्हें मान पत्र भेंट किया। उनके प्रशंसकों और प्रेमियों के द्वारा अभिनन्दन ग्रन्थ के प्रकाशन का भी आयोजन हो रहा है जो उन्हें भेंट किया जायगा। कृतज्ञ आर्य समाज के द्वारा उनकी मूल्यवान् सेवाओं के आदर स्वरूप इस प्रकार के आयोजनों द्वारा उनका जितना अभिनन्दन किया जाय थोड़ा है। सार्वदेशिक परिवार की ओर से हम उनका सादर अभिनन्दन करते हैं।

श्रीयुत पं० रामचन्द्र जी देहलवी में सफल महान् उपदेशक के गुण मूर्तिमान् हैं और उन्होंने उपदेशक के उच्च पद के यश और गौरव की न केवल रक्षाहीकी अपितु उन्हें बढ़ाया भी है। उनका जीवन आर्य समाज की शिक्षा और दीक्षा की प्रति मूर्ति है और वह आर्य समाज पर एक विशिष्ट भेंट के रूप में अर्पित है। उनके व्याख्यान प्रवचन और उपदेश आर्य समाज के सिद्धान्तों और मन्तव्यों की तर्क एवं प्रमाण युक्त मधुर व्याख्याओं से सजीव और प्रकाशमान रहते हैं।

उनके व्याख्यान जनसाधारण को ही नहीं उच्चकोटि के श्रोताओं को भी अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। संसार अच्छे व्याख्यानों के अभाव के कारण नहीं अपितु अच्छे श्रोताओं के अभाव के कारण ही मरणासन्न अवस्था को पहुंचा हुआ है। श्री पं० जी अपने व्याख्यानों से अच्छे से अच्छे श्रोताओं को जन्म देते और प्रोत्साहित करते हैं। उनकी सफलता का यह भी एक बड़ा कारण है। उनके व्याख्यानों को सुनने के पश्चात् श्रोता विचार और मनन की पर्य्याप्त सामग्री अपने साथ ले जाते हैं जिसका यश बिरले ही उपदेशकों को प्राप्त रहता है।

आर्य समाज की शक्ति और उसके प्रसार में उसकी बलिष्ठ और पवित्र वेदि ने बड़ा काम किया है। पं० जी ने अपने वैयक्तिक जीवन और उत्तम प्रचार से उसकी प्रतिष्ठा की रक्षा की और आर्य समाज के यश का विस्तार किया है। वेदि की शक्ति और प्रतिष्ठा में यदि कोई व्यवधान नजर आता है तो उसका एक कारण यह है कि उस पर बैठने वाले व्याख्याता इस बात पर ध्यान नहीं रखते कि उस वेदि से क्या कहा जाय और क्या न कहा जाय ? पं० जी के व्याख्यानोंमें यह त्रुटि नहीं पाई जाती। इस कोटि के अन्य महानुभाव भी हैं। इस प्रकार के व्याख्यानदाताओं से ही वेदि की पवित्रता और प्रतिष्ठा सुरक्षित रहती है।

पं० जी खण्डन का काम करते हैं और साथ ही मंडन का भी। उनके खंडन का ढंग इतना उच्च होता है कि उससे न तो कटुता का वातावरण व्याप्त होता है और ना ही आर्य समाज के वरिष्ठ सिद्धान्तों का गौरव ही नष्ट होता है। उनके व्याख्यानों को सुनते हुये यह अनुभव होता रहता है कि वे जिस वेदि से बोलते हैं वह आर्य समाज की वेदि है। चरित्र की सुन्दरता, और उपदेश की वरिष्ठता से ही वेदि का गौरव बढ़ता है। जिनके उपदेश बुद्धि के खंभों पर खड़े होने के साथ २ सरल, सुबोध, शिष्ट, सुरुचि पूर्ण व्याख्याओं और उपमाओं की खिड़कियों से प्रखर प्रकाश प्रवाहित करते जो चरित्र बल और विश्वास की प्रेरणा भरते हुये श्रोताओं के हृदयों को स्पर्श करते हैं वे सफल उपदेशक कहे जा सकते हैं और उनका प्रभाव स्थायी होता है। श्री पं० जी इसी कोटि के व्याख्याता हैं।

श्री पं० जी का जीवन इतना अच्छा और प्रेरणा युक्त रहा है कि वह जीवन के सायंकाल में अपने लैम्प के साथ प्रकाश बखेरता हुआ आगे बढ़ रहा है। परमात्मा करे वे चिरायु हों।

—रघुनाथप्रसाद पाठक

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री
श्रीयुत ला० रामगोपाल जी द्वारा

श्रीयुत पं० रामचन्द्र जी देहलवी का अभिनन्दन

६ अप्रैल १६५७ को आर्य समाज हापुड़ के तत्वावधान में आर्य समाज के सुप्रसिद्ध महोपदेशक श्रीयुत पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी का आयु के ७५ वर्ष पूर्ण और ७६ वें वर्ष में पदार्पण करने पर सार्वजनिक अभिनन्दन किया गया। इस अवसर पर सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री श्रीयुत ला० रामगोपाल जी ने एक विशेष प्रेस वक्तव्य के द्वारा समस्त आर्य जगत् की ओर से श्री पण्डित जी का हार्दिक अभिनन्दन किया। वक्तव्य इस प्रकार है :—

"श्रीयुत पण्डित जी आर्य समाज के उन इने गिने महोपदेशकों और शास्त्रार्थ महारथियों में से हैं जिनसे आर्य जनों के अतिरिक्त बाहर के लोगों को भी विशेष प्रेरणा मिलती रही है। उस प्रेरणा से न जाने कितने ज्ञात और अज्ञात व्यक्ति उपदेशक बने वा आर्यसमाज की ओर आकृष्ट हुये होंगे। उनके व्याख्यान, प्रवचन और शास्त्रार्थ (मुख्यतया ईसाई मुसलमानों के साथ) मधुर तर्क प्रबल युक्ति और आर्य समाज के सिद्धान्त की सरल, मनोरंजक और विद्वत्तापूर्ण व्याख्याओं से जीवित और प्रकाशित रहते हैं। लोग उनके भाषणों से अपने हृदयमें आर्यसमाज के सिद्धान्तों की उच्चता और विचार की सामग्री लेकर जाते हैं। इसी कारण उनके भाषणों में जन सामान्य तथा शिक्षित दोनों प्रकार के श्रोताओं की बड़ी भीड़ रहती है और श्रोताजन मन्त्रमुग्ध बैठे रहते हैं। निस्सन्देह उनसे आर्य समाज की कीर्ति में चार चाँद लगे हैं और वे आर्यसमाज के एक उज्ज्वल रत्न हैं।

परमात्मा करे वे चिरायु हों और आर्य समाज की अधिकाधिक मूल्यवान् सेवा करते रहें।

* शिष्टता *

[लेखक—रघुनाथप्रसाद पाठक]

शिष्टता वह शोभा होती है जो लोगों के प्रेम और आदर को आकृष्ट कर लेती है। शिष्ट व्यक्ति के जीवन से प्रवाहित होने वाले प्रकाश से लोग अपने दीपक जलाते हैं फिर भी उसकी ज्योति विशद् और उज्ज्वल बनी रहती है। लोगों की सबसे बड़ी कमाई रुपये आने और पाइयों में नहीं अपितु शुभ कामनाओं, प्रेम, और आदर की उस मात्रा से आंकी जाती है जो मनुष्य अपने सद्गुणों और सद्व्यवहार से उपार्जित करता है और जिस पर उसकी अन्तरात्मा की स्वीकृति की मुहर अङ्कित होती है। शिष्टता उन्हीं सद्गुणों में से है।

शिष्टता अर्थोपार्जन में भी बड़ी सहायक होती है। जब लिवर पूल के एक बड़े धनपति व्यापारी से उसकी अपार सम्पदा की प्राप्ति का रहस्य पूछा गया तो उसने बताया कि मैंने एक वस्तु से ही यह सम्पदा पैदा की है और वह है 'शिष्टता पूर्ण सत्य व्यवहार'। इसीलिए शिष्टता में लक्ष्मी का निवास बताया जाता है।

फलों के बोझ से वृक्ष झुक जाते हैं इसी प्रकार ज्ञानवान् सदाचारी शिष्ट व्यक्ति अपने से आयु ज्ञान और पद में छोटे व्यक्तियों के प्रति सभ्य व्यवहार करने से अपने बड़प्पन का परिचय देते हैं। मनुष्य में विद्वत्ता आदि के भले ही अनेक गुण हों परन्तु यदि उसमें शिष्टता न हो तो वे सब गुण उन फूलों के समान होते हैं जिनमें शोभा होती है परन्तु सुगन्ध नहीं होती। छोटे से छोटे व्यवहार में भी शिष्टता का परिचय देने से जीवन मधुर और उच्च बनता है।

मनुष्य की प्रमुख कामना मधुर मूर्त्ति बनने की होनी चाहिए। वाणी और हृदय की ज्ञानमय मधुरता से जो प्रेम और दया से ओतप्रोत हो, मनुष्य मधुर मूर्ति बनने में समर्थ होता है। जिस वाणी से स्वभावतया फूलों की वर्षा होती हो और जिस हृदय से प्रेम की अजस्र धारा बहती हो उस पर कौनसी विभूति है जो न्यौछावर न रहती हो। वाणी की मधुरता और हृदय की विशुद्धता से प्रवाहित होने वाली शिष्टता से जीवन के सद्गुण श्रीयुक्त हो जाते हैं। इससे जीवन-पथ सुगम होता और पराए भी अपने बन जाते हैं।

शिष्टता दो प्रकार की होती है-एक औपचारिक और दूसरी अनौपचारिक। शरीर को झुकाना, घुटने टेक कर बैठना, लम्बे लेट जाना, हाथ जोड़कर अभिवादन करना विशिष्ट प्रकार की पोशाक पहनना इत्यादि औपचारिक शिष्टता समझी जाती है जिसका सम्बन्ध रिवाज या प्रथा से होता है परन्तु साधारण नियम प्रायः सब देशों और सब कालों में एक जैसा रहता है अर्थात् अपने को विनम्र दिखाकर आदर वा प्रेम का प्रकाश करना। कुलीनता, सम्पदा, रहन-सहन बोलचाल के विशिष्ट ढंग और फैशन को ही शिष्टता का स्वरूप मान लेना ठीक नहीं है। शिष्टता का निवास इनमें से किसी में नहीं होता। उसका निवास हृदय में होता है। जिस व्यक्ति में सम्मान की उच्च भावना हो, जो दूसरों से अनुचित लाभ न उठाता हो, जो सत्य पर अडिग रहता हो, और जो प्रत्येक के प्रति कोमलता और सभ्यता का व्यवहार करता हो वही व्यक्ति सच्चे अर्थ में शिष्ट होता है।

छल-कपट, असत्य और आत्म-प्रशंसा शिष्ट व्यवहार के मार्ग में प्रबल बाधाएं होती हैं जिनसे

बचना चाहिए। इस प्रकार की शिष्टता जितना कमाती है उससे कहीं अधिक खो देती है। जिन जातियों ने लोगों को सभ्य और शिष्ट बनाने के बहाने से अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए उन्हें मानसिक या राजनीतिक दृष्टि से गुलाम बनाया उनके कपट-व्यवहार से उनकी क्षति हुई जिसके कुफल उन जातियों को न सही उनकी सन्तानों को भुगतने पड़े। साम्राज्यवादी जातियों का इतिहास इस प्रकार की शिष्टता से कलुषित है।

प्रकृति हमें शिष्टता और मधुरता का पाठ पढ़ाती है जिसको ग्रहण करके हम अपनी जीवन-वाटिका को शोभा युक्त बनाते हुए संसार के विशाल-उद्यान को मनोरम छवि प्रदान कर सकते हैं।

भगवान् ने उपदेश किया है कि सृष्टि के सारे पदार्थ मधुरता का व्यवहार कर रहे हैं, मनुष्यों को भी मधुरता का व्यवहार करना चाहिए। इस विषय में वेद के मंत्र कितने मधुर हैं :—

मधुवाता ऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः
माध्वीनः सन्त्वोषधी ॥ ऋ. १ । ९० । ७

सृष्टि नियम की अनुकूलता से चलने वाले के लिए वायु मिठास लाती है, नदियाँ मिठास बहाती हैं; औषधियाँ हमारे लिये मीठी हों।

मधुनक्त मुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः।
मधुद्योरस्तु नः पिता ॥ ऋ. १ । ९० । ७

रात मीठी है, प्रभातें मीठी हैं, पृथिवी की धूलि वा पृथिवी लोक भी मीठा है पिता द्यौ भी हमारे लिए मीठा हो।

मधुमान्नो वनस्पति र्मधुमां अस्तु सूर्यः।
माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥ ऋ. १ । ९० ।८

वनस्पति हमारे लिए मीठी है। सूर्य भी हमारे लिए मधुमान हो। हमारी गौवें मिठास वाली हों।

'यह सब मधुरताएँ सरल, सीधे और सृष्टि नियमानुकूल सत्य व्यवहार करने वाले के लिए अभिप्रेत हैं।

जो व्यक्ति यह चाहता है कि लोग उसके साथ शिष्ट व्यवहार करें उसे दूसरों के साथ भी शिष्ट व्यवहार करना चाहिए।

मनुष्य प्रायः धन सम्पत्ति और अधिकार आदि के मद में भूलकर अशिष्ट व्यवहार का दोषी बन जाता है। इनसे जो बल प्राप्त होता है उसकी शोभा अशिष्ट व्यवहार से नष्ट हो जाती है। वीरता और बल की शोभा शिष्टता में ही है।

जिस प्रकार प्रातःकालके सूर्य की किरणें सोते हुए फूलों को जगाकर उन्हें खिलाती हैं उसी प्रकार हमारा जीवन लोगों के हृदयों को खिलाने वाला होना चाहिए और जब उसका अन्त हो तो वह छिपते हुए सूर्य की तरह महिमामय होना चाहिए।

—जहाँ शीतल, मन्द और सुगन्ध समीर चल रही है, जहाँ रमणीय वनस्पतियाँ उग रही हैं, जहां स्फटिक के सदृश निर्मल झरनों के जल बह रहे हैं, ऐसे हिमालय की रम्य ऊंची चोटी पर योगी जन निवास करते थे इसीलिए उसे वैकुंठ कहते थे। —महर्षि दयानन्द उ० मं०

—जो मनुष्य मन, वचन और कर्म से नम्र होता है जिसका व्यवहार सूर्य की किरणों के समान प्रकाशमान है जो सदा प्रभु के साथ मित्रता तथा प्राणी मात्र के साथ भ्रातृभाव रखता है और जो सदा विद्वानों का हित करता है वह ही सब प्रकार के इष्ट फल को प्राप्त होता है॥

ऋ० भा० ४ । २५ । ५

ऋषि के वेदभाष्य आदि समस्त ग्रन्थों पर टीका लिखने की आवश्यकता

[लेखक-आचार्य विश्वश्रवाः संस्थापक वेदमन्दिर बरेली]

शंकराचार्य आदि के भाष्य उतने महत्त्वपूर्ण नहीं थे जितना उनको महत्त्वपूर्ण उनके शिष्यों ने अनेक टीकाएं लिख कर बनाया। अष्टाध्यायी जैसा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भी उतना महत्त्वपूर्ण न बनता यदि पातञ्जल महाभाष्य आदि ग्रन्थों की रचना अष्टाध्यायी पर न होती। मूल दर्शनों के सूत्रों को भी वात्स्यायन आदि भाष्यकारों ने ही गौरव पूर्ण बनाया। पर महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के ग्रन्थों पर टीका लिखने का काम अब तक न न हुआ। संस्कार विधि के बाह्य अङ्गों पर संस्कार चन्द्रिका केवल लिखी गई और सत्यार्थप्रकाश के दो समुल्लासों पर टीका लिखी गई जिसका व्याकरणांश बहुत कुछ मेरा ही लिखा हुआ है। महर्षि के ग्रन्थों पर खण्डन ग्रन्थ बहुत लिखे गये पर टीका ग्रन्थ नहीं और ऐसी परिस्थितियां पैदा हो गईं कि अपने ही विद्वानों ने अन्दर अन्दर यह कहना आरम्भ कर दिया कि ऋषि के वेदभाष्य आदि में हजारों गलतियां हैं, ऋषि के ग्रन्थों में परस्पर विरोध भी है, और पण्डितों का हाथ भी ऋषि के ग्रन्थों में है जिससे उलझ कर ऋषि के ग्रन्थों को बदनाम करने के लिये कुछ बातें पण्डितों ने डाल दी हैं। पर मैं इन सब बातों को उन पण्डितों की कमजोरी ही समझता हूं बस यही कहा जा सकता है कि 'नाच न आवे आंगन टेढ़ा'। जिनको लोग गलतियां कहते हैं मैं जब उन पर विचार करता हूँ तब इतने सुन्दर समाधान सूझते हैं कि उनमें ऋषि के अपूर्व पाण्डित्य की प्रतिभा नजर आती है। बहुतसी बातों के समाधान मैं समाचार पत्रों में देता रहता हूँ और अपने लिखे ग्रन्थों (यज्ञ पद्धतिमीमांसा, सन्ध्यापद्धति मीमांसा निरुक्त के समझने में प्राचीन आचार्यों की भूल आदि) में तथा समय समय पर प्रकाशित होनेवाले स्मारक ग्रन्थों में निबन्ध के रूपमें लिखता रहा हूं। मेरा विश्वास है कि यदि ऋषि के सब ग्रन्थों पर विस्तृत टीकाएं लिखी जावें तो ऋषि के ग्रन्थ प्रकाश को प्राप्त हो जावें और सब शंकाएं समाप्त हो जावें। पर ऋषि के ग्रन्थों पर वह व्यक्ति भाष्य लिख सकता है जिसमें तीन गुण हों—

(तीन गुण)

१–व्याकरण आदि समस्त शास्त्रों का प्रकाण्ड पण्डित हो।

२–रिसर्च के कार्य का विशेष अनुभव कहीं रिसर्च संस्थाओं में किया हो।

३–ऋषि का परम श्रद्धालु भक्त हो।

उपर्युक्त तीनों में से किसी एक गुण की भी कमी होगी तो वह कार्य न कर सकेगा। जिसका अध्ययन कम है संस्कृत का उच्चकोटि का विद्वान् नहीं है वह क्या समाधान करेगा? उस स्वयं अधकचरे पाण्डित को तो सब गलत ही गलत नजर आवेगा।

> गुरोः गिरः पञ्च दिनान्यधीत्य,
> वेदान्तशास्त्राणि दिनत्रयं च।
> अमी समाघ्राय च तर्क वादान्,
> समागताः कुक्कुट मिश्रपादाः॥

ऐसे कुक्कुट मिश्र असफल ही रहेंगे।

जिस व्यक्ति ने रिसर्च संस्थाओं में काम नहीं किया है वह पण्डित होता हुआ भी उलझ जावेगा। रिसर्च की परम्पराओं को न समझने वाले व्यक्तियों को कोई समझा भी नहीं सकता कि तुम में कमजोरी कहां है वह यही कहेगा कि इसमें क्या रखा है पहले के विद्वान् क्या इसको नहीं समझते थे यह उसकी समझ से परे की बात है। रिसर्च का सिद्धान्त है कि जो लोअर रिसर्च में होकर नहीं गुजरा है वह हायर रिसर्च का काम नहीं कर सकता। ये लोअर रिसर्च और हायर रिसर्च हम लोगों के जो रिसर्च का कार्य करते हैं ये पारिभाषिक शब्द हैं। अतः वर्तमान युग में जो साधन बन गये हैं उनको न जानने वाला व्यक्ति ऋषि के ग्रन्थों पर टीका लिखने का काम नहीं कर सकता। इस विद्या को न जानने वालों ने क्या क्या उपहासास्पद बातें अपने ग्रन्थों में लिखी हैं मैं उनका वर्णन नहीं करता।

जो ऋषि का परमश्रद्धालु नहीं है उसके सामने कोई कठिन बात आवेगी बस उसको गलत समझ कर छोड़ देगा। जब यह भावना बन जाती है कि ऋषि के ग्रन्थों में गलतियां हैं परस्पर विरोध है और ऋषि के ग्रन्थों में पण्डितों का हाथ है तब ऐसे व्यक्ति की बुद्धि आगे काम नहीं करती और वह सोचना छोड़ देता है। यदि वह दृढ़ विश्वास पर जमा रहे तो उस की ही बुद्धि समाधान प्रस्तुत कर दे अतः ऐसा बहका व्यक्ति भी ऋषि के ग्रन्थों पर टीका लिखने का कार्य नहीं कर सकता है। अतः जो व्यक्ति प्रकाण्ड विद्वान् है जो निरन्तर अध्ययन करता है और जिसको रिसर्च के कार्यों का पूर्ण अनुभव है और ऋषि के ग्रन्थों में उसकी आत्मा में सन्देह नहीं है वही त्रिगुण-सम्पन्न व्यक्ति ऋषि के ग्रन्थों पर टीका लिखने का कार्य कर सकता है।

(ऋषि के वेदभाष्य के खण्डन का इतिहास)

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने अपने पूर्ववर्ती पौराणिक वेदभाष्यकारों सायण माधव आदि का और योरोप के लेखक विलसन आदि का खण्डन अपने वेदभाष्यमें किया। इसके अतिरिक्त पूना में कुछ पण्डितों ने बैठकर एक वेदार्थ-यत्न नाम का भाष्य छापा था उसका भी खण्डन ऋषि ने किया। इसकी प्रतिक्रिया में उसी युग में बंगाल के पण्डितों ने प्रकृतार्थवाहिनी नाम का वेदभाष्य स्वामी दयानन्दजी के वेदभाष्य के खण्डन में छापा। इस दिशा में दूसरा प्रयत्न स्वामी जी के सहपाठी उदयप्रकाशनारायण का है जो स्वामीजी के पाण्डित्य की प्रसिद्धि को सहन नहीं कर सके और उदय प्रकाश नारायण ने यजुर्वेद का भाष्य सम्पूर्ण किया और छापा। उस अपने वेदभाष्य में स्वामी जी के वेदभाष्य का नाम 'दोषाकर' रखा अर्थात् दोषों का खज़ाना और स्वामी जी के वेद-भाष्य का खण्डन किया। स्वामी जी के वेदभाष्य के खण्डन का तीसरा प्रयास कपाली शास्त्री का ऋग्वेद का सिद्धाञ्जनभाष्य है जिसमें स्वामीजी के वेदभाष्य का खण्डन है। यह कपाली शास्त्री अरविन्द का चेला है। इसने अपनी भूमिका मे अरविन्द को ऋषि महर्षि लिखा और ऋषि दयानन्द का नाम तक अपने वेदभाष्य की भूमिका में वेद-भाष्यकारों में नहीं लिखा और जिस अरविन्द को आर्यसमाजी भी अज्ञानता से योगी आदि लिख बैठते हैं उस अरविन्द ने अपने ग्रन्थों में स्वामी दयानन्द जी को कहीं भी ऋषि नहीं लिखा क्योंकि उन्हें स्वयं ऋषि बनना था। अरविन्द की कुछ पंक्तियां दिखा दिखाकर लोग गीत गाते हैं कि अरविन्द ने स्वामी जी के वेदभाष्य की बड़ी प्रशंसा की है उन अरविन्द के ग्रन्थों को पढ़कर देखो अरविन्द जी स्वामी जी की बातों की प्रशंसा करके आगे लिख देते हैं कि किन्तु यह बात बन नहीं सकती जैसा स्वामी दयानन्द कहते हैं। अरविन्द का मस्तिष्क विलसन आदि योरोप के स्कालर के समान है। अरविन्द के मूल ग्रन्थों को जो कोई

पढ़वा नहीं ऊपर से गीत गाये जाते हैं। स्वामीजी के वेदभाष्य का पदे पदे खण्डन पं० सातवलेकरजी अपने वेदभाष्यों में छाप रहे हैं और स्वामी जी के वेदभाष्य की मजाक उड़ा रहे हैं। पता नहीं कि आर्यसमाज के कर्णधारों को ऋषि के वेदभाष्यों के इन खण्डन ग्रन्थों का पता भी है या नहीं और कुछ ऐसे छुपे रुस्तम हैं जो इन सब खण्डनों से प्रभावित होकर अन्दर अन्दर स्वामीजी के वेदभाष्य को चूहे की तरह कुतर रहे हैं हमें बस डर इनका है। बाहरवालों का नहीं।

[ऋषि के पाण्डित्य पर सन्देह]

हर बात को छान्द सखात् कह देना या गलत कह देने में केवल भाषा का भेद है अभिप्राय दोनों का एक है। छान्दसलात् या बहुल छन्दसि कह देना पर्याप्त नहीं है उसको भी वैदिक साहित्य से सिद्ध करना आवश्यक है। कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं जो ऋषि के वेदभाष्य में पाण्डित्य की कमी अनुभव करते हैं स्वयं समाधान नहीं कर पाते पर वे चाहते हैं कि किसी प्रकार यदि इनका समाधान हो जावे तो अच्छा है वे स्वयं प्रसन्न होंगे पर बाबा वाक्यं प्रमाणम्, करके वे मानने को तैयार नहीं होंगे। ऐसे व्यक्तियों के दिखाये वेदभाष्य स्थलों का कुछ वर्णन मैं करता हूँ कोई पण्डित हो तो इनका उत्तर लिखें।

[शंकाएं]

१-ऋग्वेद के प्रथम सूक्त में ही एक 'दोषावस्तः' पद आता है जो आद्युदान्त है जिसके कारण वह सम्बुद्धि का रूप है पर सायण आदि भाष्यकारों ने स्वर न समझ कर इस पद का अर्थ रात दिन कर दिया यही भूल स्वामी दयानन्द जी ने की जो इस दोषावस्तः आद्युदान्त पद का अर्थ दिन रात कर दिया वस्तुतः यह आद्युदान्त पद सम्बुद्धि का है इस बात को केवल एक वेदभाष्यकार समझा जिसने इसका अर्थ हे दोषावस्तः ! = रात्रेराच्छादयितः ! किया। यहां स्वामी जी सायण की नकल कर बैठे और स्वरशास्त्र को नहीं समझे।

२-'सविता' पद की व्युत्पत्ति गायत्री मन्त्र की व्याख्या में 'सुनोति' भी स्वामी जी देते हैं और ऐश्वर्य प्रदाता अर्थ भी करते हैं। पर 'सुनोति' अनिट धातु है और ऐश्वर्य अर्थ वाली धातु भी अनिट है वहां सविता नहीं बन सकता 'सोता' बनेगा अत एव सब भाष्यकार सविता का अर्थ प्रेरयिता करते हैं क्योंकि षू प्रेरणे धातु से इट होकर सविता बन सकता है।

मैंने इन दोनों प्रश्नों के उत्तर बड़े बड़े वैयाकरणों से पूछे सब ने स्वामी जी को अशुद्ध ही बताया। मैं चाहता हूं कि आर्य जगत् का कोई पण्डित इन दो ही प्रश्नों के ही उत्तर देवें ऐसे सैकड़ों स्थल हैं। यह मेरा विश्वास है कि ऋषि से कोई भूल नहीं हुई है इसका भी उत्तर कभी बनेगा। मैं अपने वेदभाष्य प्रदीप में ऐसे स्थलों के पाण्डित्यपूर्ण उत्तर लिखने का कार्य कर रहा हूं और चाहता हूं कि ऋषि के सब ग्रन्थों पर भाष्य लिखूं यदि ऋषि-भक्तोंका सहयोग प्राप्तहुआ तो सबकुछ होजायगा।

—यह बड़े आश्चर्य्य की बात है, कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य्य, चन्द्र, वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, दिन रात, प्रहर, मुहूर्त्त, घड़ी, फल, क्षण, आंख, नाक, कान, आदि शरीर, ओषधि, वनस्पति खाना, पीना आदि व्यवहार ज्यों के त्यों बने हुए हैं, फिर हम आर्य्यों का हाल क्यों बदल गया ? हे मनुष्यों ! आप लोग अत्यन्त विचार करके देखो जिसका फल दुःख वह धर्म जिसका फल सुख वह अधर्म कभी हो सकता है ? अतः अपनी अधोगति का एक मात्र कारण वेद विरुद्ध आचरण ही है।

—दयानन्द

* वृक्षों में जीव ? *

[लेखक—श्रीयुत प्रेमकुमार पाण्डेय "प्रेमी"]

आर्य विद्वानों में उपरोक्त विषय पर अभी तक मत भेद है। हमारे पास तत्सम्बन्ध में प्रमुख दो ग्रन्थ है जो दोनों पक्षों का प्रतिनिधित्व करते हैं। पहला है "वृक्षों में जीव" इसके लेखक है श्रीयुत स्वामी मंगलानन्द जी ! इसमें वृक्षों में जीव का होना सिद्ध किया है। लगभग ४७६ पृष्ठों के इस विशाल ग्रन्थ में स्वामी जी ने अनेक विद्वानों, वैज्ञानिकों, वेद-शास्त्र, रामायण, महाभारत और श्री १००८ श्री दयानन्द जी महाराज के तर्क प्रमाण देकर अपने मत की पुष्टि की है। दूसरा है "हम क्या खावें" ? घास या मांस" इसके रचयिता हैं पूज्यपाद महा पंडित श्री गंगा प्रसाद जी उपाध्याय आपने इस पुस्तक में अति रोचक और तार्किक प्रश्नोत्तरों द्वारा जीव का वृक्ष में नहीं होना बताया है।

जुलाई ५६ के सार्वदेशिक में श्री लाखन सिंह जी ने एक लेख लिख कर जीव का अस्तित्व मानते हुए वृक्षों को सजीव माना था। जिसका खण्डन फरवरी ५७ अङ्क में श्री कमला प्रसाद जी दुबे ने प्रकाशित किया है। पूज्यपाद पं० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय भी २ ३ लेख आर्य मित्र में छपवा कर अपने मत को और पुष्ट कर चुके हैं आपके मत के पक्ष में पूज्यपाद श्री स्वामी दर्शानानन्द जी का मत भी है। उधर श्री पं० गंगा प्रसाद जी M. A. वृक्षों में जीव मानते हैं।

यह एक ऐसा जबरदस्त घुटाला है जिसने सभी आर्यों की मति उलट रखी है और गैर आर्य-समाज इस चक्कर को देखकर खुद भी चकराते हैं। और आर्य समाजियों को भी चक्र में डाल देते हैं। अतः यह अत्यन्त आवश्यक था कि इस विषय पर सार्वदेशिकआर्यप्रतिनिधिसभा दिल्ली अपनामत प्रकट कर इस असमंजस को समाप्त कर देती। फलतः सभा ने वृक्षों में जीव का होना सत्य मानने की घोषणा कर दी। फिर भी कुछ जिज्ञासु बन्धु अपनी शंकाएं रखा करते हैं। श्री कमला प्रसाद जी दुबे ने भी ऐसा ही किया हैं अतः मैं उनकी शंका का समाधान भेज कर वृक्षों में जीव होना सिद्ध करता हूँ। पाठक ध्यान पूर्वक पढ़ कर सत्यासत्य का निर्णय करें।

दुबे जी ने पहला तर्क "इच्छा" के विषय में लिखा है उसका उत्तर लीजिये:—

(१) यदि पानी न मिलने से वृक्षों का मुरझाना सजीव होने का चिन्ह हुआ तो पानी के अभाव से फटने वाली मिट्टी भी सजीव माननी होगी यह तर्क नहीं तर्काभास है। हमने गीली मिट्टी भी फटी हुई देखी है (देखिये किसी कुए पर जब चड़स से पानी खींच कर बाग में पहुंचाया जाता है तब पानी की नाली में रहने वाली गीली मिट्टी पानी के रुकने पर गीली होकर भी फट जाती है) फटी हुई मिट्टी पर वर्षा होने पर वह बराबर नहीं होती। अतः उसे सजीव मानने का प्रश्न ही नहीं हो सकता।

(२) यदि बड़े पेड़ों को छोटे पेड़ों से हानि नहीं होती या बड़े पौधे छोटे पौधों की खुराक नहीं खा जाते तो खेती में नींदने का कार्य नहीं होता। खेतों में अनावश्यक घास फूस इसलिये उखाड़ दिया जाता है ताकि वे फसल को नुकसान न पहुँचा सकें।

(३) जिस प्रकार एक मनुष्य के वीर्य से अनेक संतान पैदा होता हैं उसी भाँति वृक्षों के बीज (वीर्य) में और कुछ विशेष पौधों की कलमों में ऐसे तत्व होते हैं। जिनसे उत्पादन हो जाता है। जीव अविभाजित है। माता पिता के संयोग से जन्म लेने वाला जीव माता पिता के जीव का अंश नहीं होता।

पानी गंगा यमुना के संगम पर विभिन्न रंग का होने के कारण ही अलग २ दिखता है पर कलकत्ता में नहीं दिखता इसलिये इस तर्काभास से जीव का अस्तित्व पानी में नहीं माना जा सकता।

(४) कुछ और वाक्य दुबे जी ने लिखे हैं पर उनमें कोई खास तर्क या युक्ति नहीं जिनका उत्तर दिया जावे। अधर बेल के विषय में इतना कहा जा सकता है कि जिस प्रकार कुछ जीव आज भी बिना माता पिता के संयोग के पैदा हो जाते हैं उसी प्रकार अधरबेल (अमरबेल) भी बिना बीज या कलम लगाये पैदा हो जाती है।

किसी भी वस्तु के द्वारा लाभ या हानि होने से ही जीव का होना या नहीं होना नहीं माना जाता फिर जल, अग्नि, हवा आदि में जीव मानने का प्रश्न ही बेकार है।

अब मैं कुछ स्वतन्त्र रूप से निजी विचार रख कर अपने मत की पुष्टि में तर्क व युक्ति लिखता हूँ।

वृक्षों में पैदा होना, विकसित होना, विकास होते रहना, विकास रुक जाना, क्षय होना और अन्त में नष्ट हो जाना पाया जाता है जिनसे जीव का होना सिद्ध होता है। बिना जीव के विकास, घटना बढ़ना नहीं हो सकता। हमारे शरीर की भाँति वृक्षों का शरीर भी बढ़ता है। फलफूलपत्तियाँ उत्पन्न करता है और अपनी जाति की भांति ही फल देता है। जिस प्रकार घोड़ा घोड़ी से गधी गधे के योग से पैदा होने वाले खच्चरों की संतान पैदा नहीं होती इसी तरह कलम से लगाये हुए वृक्षों के फल से उत्पत्ति नहीं होती

वैदिक सम्पत्ति के विद्वान लेखक पूज्य पंडित श्री रघुनन्दन जी शर्मा ने अपने महान ग्रन्थ के पृष्ठ ७०० से ७१४ तक इस प्रकरण पर सुन्दर प्रकाश डाला है सो वहाँ पढ़िये।

वृक्षों में जीव वैदिक काल से ही माना जाता रहा है। डा० जगदीश चन्द्र वसु जैसे महान वैज्ञानिक धोखा नहीं खा सकते। उन्होंने सबसे बड़ा कमाल यही किया है कि भौतिक साधनों से भी आत्मा का अस्तित्व (भले ही वृक्षों में ही) सिद्ध कर आत्मा नाम की कोई वस्तु न मानने वाले वैज्ञानिकों की आंखें खोल दीं।

सबसे बड़ी शंका यही उठती है कि यदि वृक्षों में जीव है तो उन्हें काटना या उनके फल खाना जीव हत्या क्यों नहीं हुई? फिर लाल रंग के तरबूज और बकरे के गोश्त में क्या अन्तर रहा?

यद्यपि इस प्रश्न का उत्तर लिखने के लिये एक बड़ी पुस्तक लिखी जानी चाहिये तथापि लेख विस्तार के भय से संक्षेप में उत्तर लिखता हूँ।

माँसाहार हमारे धर्मशास्त्रों में केवल दो कारणों से वर्जित है। एक तो माँस की प्राप्ति बिना जीव को कष्ट दिये नहीं होती और (यदि किसी प्रकार से सम्भव भी हो तो) दूसरे मांसाहार हमारे शरीर व मन के स्वस्थ्य, निरोग, निर्विकार और पवित्र रखने में बहुत बड़ा बाधक है।

फलाहार और अन्नाहार हमारा ईश्वरीय नियमानुसार स्वाभाविक भोजन है जो स्वास्थ्य के लिये हितकारी है और जो भी वनस्पति हमारे स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है वह भी माँसाहार की भांति वर्जित है। जिस प्रकार सिंह को पशुओं पर बिल्ली को चूहे पर, सर्प को मेंढकादि पर प्राकृतिक स्वत्व है और वे उसे खा जाते हैं उसी प्रकार वनस्पति पर मनुष्य का प्राकृतिक स्वत्व है वेदों में ऐसा विधान है। जिस आहार को वेदों में परमात्मा ने भक्ष्य बताया है उसका आहार करना पाप नहीं है और वेद तथा आयुर्वेद में मांसाहार वर्जित, अभक्ष्य बताया है तथा वनस्पति भक्ष्य स्वीकृत किया गया है अतः हमारा स्वाभाविक भोजन मांसाहार नहीं है।

इस विषय में प्रत्येक शंका का समाधान करने के लिये सभी शंकालु भाइयों को परमपूज्य श्री स्वामी मंगलानन्द पुरी जी का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "वृक्ष में जीव है" ध्यान पूर्वक पढ़ना चाहिये फिर कोई शंका न रहेगी। मैं भी पहले पूज्य पाद पंडित श्री गंगा प्रसाद जी उपाध्याय कृत: "हम क्या खावें?" नामक पुस्तक पढ़ कर वृक्षों को सजीव नहीं मानता था पर उपरोक्त ग्रन्थ ने मेरा विचार परिवर्तित कर दिया है। इसका पता है:—श्री लक्ष्मी शंकर जी वर्मा—मैनेजर एल० एस० वर्मा एण्ड कं०, १३८ अतरसुया—प्रयाग।

समन्वय की प्रेरणा

गुरुकुल कांगड़ी अमरशहीद स्वामी श्रद्धानन्दजी की ऐसी देन है जिसपर उचित ही गर्वानुभव किया जा सकता है और इसलिए देशहित की दृष्टि से जो आवश्यक हो वह आशा भी उससे की जानी चाहिए। उसके हाल के दीक्षान्त-समारोह में दीक्षान्त-भाषण करते हुए श्री चिन्तामणि द्वारकानाथ देशमुख ने उसे पुरातन और आधुनिक में समन्वय की जो प्रेरणा की है उसे, इस दृष्टि से, हम बहुत महत्व देते हैं। प्राचीन गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली के ग्रहण द्वारा ८ से १८ वर्ष की आयु तक विद्यार्थी के जीवन के प्रत्येक क्षण पर अधिकार जमाकर स्वीकार की गई गम्भीर जिम्मेवारी को निभाते हुए मानस शास्त्र के नवीनतम सिद्धान्तों का भी पूरा ध्यान रखने की वह गुरुकुल वालों से आशा करते हैं। "हमें अपनी पुरातन परम्परा पर अभिमान अवश्य होना चाहिए," वह कहते हैं, "किन्तु साथ ही साथ मानवीय ज्ञान के विकास के अनुसार अपनी परम्परा में आवश्यक परिवर्त्तन करने की तैयारी भी रखनी चाहिए।" यह ऐसी सलाह है जिसे सामयिक मानकर गुरुकुलीय रीति-नीति में समयानुकूल परिवर्त्तन की ओर विचार किया जाना अलाभदायक नहीं होगा।

श्री देशमुख की उपर्युक्त सलाह की पृष्ठभूमि में ही उनकी यह बात भी विचारणीय है कि ज्ञान तथा विज्ञान के बीच विरोध नहीं अपितु सामंजस्य है' और 'मानव समाज को ज्ञान तथा विज्ञान दोनों की आवश्यकता है'। ज्ञान और विज्ञान के बीच कथित भेद का विश्लेषण करते हुए उन्होंने बताया है कि ज्ञान केवल सांस्कृतिक तथा सामाजिक विषयों के निरूपण को माना जाता है और विज्ञान भौतिक सृष्टि के निरूपण को कहा जाता है। कुछ लोग ज्ञान तथा विज्ञान की तुलना करते हुए एक को श्रेष्ठ और दूसरे को तुच्छ भी साबित करते हैं श्री देशमुख कहते हैं: "मानवीय जीवन" केन्द्रस्थ की चर्चा करके जीवनमूल्यों को स्थिर करने तथा संसार की विविध वस्तुओं का मूल्यानुसार अनुक्रम लगाने के लिए ज्ञान की आवश्यकता है और इन वांछित वस्तुओं को भौतिक सृष्टि से आसानी से प्राप्त करने के लिए विज्ञान की।" अतएव इनमें परस्पर विरोध नहीं है, बल्कि "ज्ञान की मजबूत नींव न होने पर विज्ञान का महल खतरनाक बनकर रहेगा।" वह यह अवश्य मानते हैं कि "विज्ञान के क्षेत्रों में दिन प्रतिदिन जो प्रगति हो रही है उसकी तुलना में सांस्कृतिक तथा सामाजिक क्षेत्रों में कोई चमत्कृतिजन्य आविष्कार दिखाई नहीं देता।" इसी प्रकार इसे भी वह स्वाभाविक मानते हैं कि "भारत जैसे पिछड़े हुए देश में भौतिक समृद्धि बढ़ाने के लिए विज्ञान की प्रगति पर अधिक बल दिया जाय।"

भौतिक समृद्धि-वृद्धि के लिए विज्ञान की प्रगति के सिलसिले में आगे उनका विवेचन और भी स्पष्ट है। "हम सबको एक बात माननी होगी," वह कहते हैं, "कि भारत आज औद्योगिक क्रान्ति के द्वार पर खड़ा है। पुरातन कृषि-प्रधान तथा शान्ति-प्रधान व्यवस्था के गर्भ में विद्युतयंत्र-चालित गतिमान उद्योग जन्म ले रहे हैं।" और इस क्रान्ति के लिए असंख्य कारीगरों, शिल्पियों तथा यंत्रज्ञों की आवश्यकता होगी।" इसलिए "यदि हम इस स्पर्धाशील दुनिया में अपना स्वातंत्र्य बनाए रखना चाहते हैं और जनता का जीवनस्तर उठाकर समाजवादीव्यवस्था के अपने उद्घोषित ध्येय की ओर अग्रसर होना चाहते हैं तो हमें अपने शिक्षा-व्यय में इस बात का प्रबन्ध पहले करना होगा।" मतलब यह कि ज्ञान की नींव मजबूत रखते हुए विज्ञानप्रद

नई भौतिक आवश्यकताओं के अनुरूप स्नातक गुरुकुल को प्रस्तुत करने चाहिए'।

प्राचीनता में नवीनता के उपर्युक्त पुट का प्रतिपादन करते हुए श्री देशमुख ने मानव के बुनियादी गुणों की उपेक्षा नहीं की, यह ध्यान रखने की बात है। नवस्नातकों को 'आदर्शपूर्ण वातावरण' से 'व्यवहारी एवं व्यापारी दुनिया, में प्रवेश के समय उन्होंने कहा है: "दुनिया बहुत गतिमान है और उसमें वैज्ञानिकों तथा शिल्पिकों की मांग बहुत ज्यादा है, लेकिन उनसे भी अधिक आवश्यकता ऐसे लोगों की है जिनके चरित्र न्याय प्रियता तथा कर्त्तव्यशक्ति में विश्वास किया जा सके।" यह बताकर कि 'सदियों की गुलामी के कारण हम लोगों में कुछ बधिरता सी आगई है-अन्याय, अशिष्टता या असत्य को हम आसानी से सह लेते हैं. उन्होंने कहा है-"यह नैतिक बधिरता हमें त्यागनी होगी।" और "यह काम आप जैसे नवयुवकों को करना होगा।" साथ ही जीवन स्पर्द्धा की यथार्थता प्रकट की, "आप बड़ी भावुकता के साथ जिस दुनिया में प्रविष्ट होंगे उस दुनिया में सुख-भावों की बहुत कमी होगी और उन्हें प्राप्त करने के लिए कड़ी खींचातानी नजर आयगी। इस खींचातानी में नैतिक स्तर बहुत गिरा हुआ दिखाई देगा। सत्ताला भ, कुटिलता, मिथ्याचार, न्याय के प्रति उदासीनता आदि दुर्गुणों का बोलबाला भी आप सर्वत्र पायंगे।" और कहा, "इस प्रतिकूल हवा में आपके चरित्रबल की परीक्षा होगी।" तथा "इस हवा को बदल देने का काम आप जैसे सुसंस्कृत तथा दृढचरित्र नवयुवकों को करना है।" यही नहीं बल्कि यह अपेक्षा केवल असामान्यों तक ही न रखकर सामान्यों की दृष्टि से कहा कि उनके बस में एक बात हमेशा हो सकती है। वह यहकि "वे अपने चरित्र पर अचल रह सकते हैं और सारे समाज की प्रगति में सहायता कर सकते हैं। अतः "आप ऊंचे या नीचे किसी पद पर भी काम करें, मैं आप से यह निवेदन करूंगा कि पूरा दिल लगाकर काम करिये और अपने चरित्र को बनाये रखिये।" यह भी उन्होंने कहा कि 'ऊंचे या नीचे पद से चरित्र का कोई सम्बन्ध नहीं है और 'सच्चरित्र द्वारा प्राप्य आनन्द की तुलना में सब आसक्तिजन्य सुख फीके पड़ जाते हैं, यह 'मानवजाति का आजतक का अनुभव' बताते हुये कहा, "हम सब लोग जीवन में अधिक से अधिक आनन्द के अलावा और चाहते भी क्या हैं?" इस प्रकार प्राचीन अर्वाचीन के समन्वय, ज्ञान विज्ञान के सामंजस्य और चरित्रबल द्वारा अधिकाधिक आनन्द प्राप्ति की श्री देशमुख ने प्रेरणा की। यह ऐसी प्रेरणा है जिसका समर्थन ही किया जा सकता है।

(हिन्दुस्तान)

—मनुष्य को इसलिए शिक्षित नहीं करना है कि उसे जूते, हथौड़े और पिनें बनानी हैं अपितु इसलिए कि उसे मनुष्य बनाना है।

—जो शिक्षा आत्म संयम नहीं सिखाती वह शिक्षा शिक्षा नहीं है।

—अमेरिका की विस्तृत शिक्षा प्रणाली में सबसे बड़ा दोष यह है कि बुराई को मिटाने का यत्न करती है परन्तु गुणों को उत्पन्न करने का यत्न नहीं करती।

श्री स्वामी विद्यानन्द जी वेद संस्थान अजमेर

का

दम्भ-दमन

[लेखक—श्री स्वामी ध्रुवानन्द जी महाराज]

वेद भाष्य करने का पुरातन प्रशस्त प्रकार है जो इसका परित्याग करता है और यदि वेद का भाष्य करता है तो वह अपनी परप्रत्ययनेय बुद्धि का पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत, लोक-वंचनाय-विहित कर्मानुष्ठानं दम्भ: और वेद पर प्रबल-प्रहार करता है।

प्रश्न-वेद भाष्य करने का प्रशस्त प्रकार क्या है?

उत्तर-उपवेद, वेद के अंग और उपांग आदि का यथावत् अध्ययन ही पुरातन प्रशस्त प्रकार है। इस प्रकार का परित्याग कर जो वेद भाष्य करेगा उसका भाष्य वस्तुत: उपादेय नहीं हो सकेगा। और वह भाष्य वेद पर प्रबल-प्रहार होगा। सत्य ही लिखा है कि "बिभेत्यल्प श्रुतात् वेद: नयामयं प्रहरेदिति।" जिस व्यक्तिने उपवेदादि का अध्ययन नहीं किया है और भाष्य करता है तो उसके भाष्य से वेद डरता है, कांपता है और कहता है कि अब यह मुझ पर प्रहार करता है।

प्रश्न-प्रशस्त-पुरातन प्रकार का परित्याग करने पर वेद-भाष्य क्यों नहीं हो सकता है?

उत्तर-जिस साध्य की सिद्धि में हेतु और उदाहरण न हो उस साध्य की सिद्धि कष्ट-साध्य ही ही नहीं अपितु असम्भव है।

प्रश्न-साध्य, हेतु और उदाहरण क्या वस्तु है? क्या बलाय है?

उत्तर-मूर्खत्वावच्छिन्न ही बलाय कह सकता है किन्तु शास्त्रवित् समादर ही करेगा।

प्रश्न-स्पष्ट समझाओ तो सही।

उत्तर-चौपटानन्द:, वेदभाष्यकरणासक्त: उपवेदांगोपांगाध्ययनाभावत्वात्, मूर्खानन्दवत्। यहां पर चौपटानन्द पक्ष, वेद भाष्य करने की अशक्ति साध्य उपवेद आदि का न पढ़ना हेतु और मूर्खानन्द उदाहरण है अर्थात् मूर्खानन्द ने उपवेदादि का अध्ययन नहीं किया था अतएव वेद भाष्य नहीं कर सका इसी प्रकार चौपटानन्द भी वेद भाष्य नहीं कर सकेगा क्योंकि उसने भी उपवेदादि नहीं पढ़े हैं।

प्रश्न-कोल्हापुर निवासी श्रीयुत पं० गणपतिराव गोरे जी के प्रश्न के उत्तर में श्री स्वामी विद्यानन्द जी वेद संस्थापक अजमेर ने सितम्बर सन्-१९५६ के सविता में लिखा था कि "वेद मन्त्रों का वास्तविक अर्थ निर्विकार चिन्तन, आत्मानुभूति और अन्त: श्रवण के द्वारा ही प्रकट होता है।" क्या यह उत्तर उचित नहीं है?

उत्तर-वस्तुत: उन्होंने यह उत्तर अपनी दुर्बलता को दबाने के लिये दिया है क्यों कि उन्होंने उपवेदादि का यथावत् अध्ययन नहीं किया है।

प्रश्न-आप कैसे जानते हो कि उन्होंने उपवेदादि का यथावत् अध्ययन नहीं किया है?

उत्तर-सार्वदेशिक धर्मार्य सभा की अन्तरंग में प्रकारान्तर से इन्होंने लिखित रूप में स्वीकार किया था। हां, ऐसा प्रतीत होता है कि इनकी आन्तरिक अभिलाषा ऋषि बनने की है। सविता, भाषण और ऐकान्तिक वैयक्तिक वार्तालाप इसका प्रमाण है। वेद-भाष्य करके ऋषि बनना दूरमेतत् "इन्दु: प्रयास्यति विनंक्ष्यति पंकजश्री: स्थास्यन्ति दीदितिमिरा न मणिप्रदीपा:। अन्यं सभाम यदि कीटमणौं भविष्यत्युन्मेषमेष्यति भवानपि दूरमेतत्।"

भाद्रपद शुक्ल पक्ष अष्टमी की अर्ध रात्रि में खद्योत-फ्दवीजना सोचने लगा कि जब चन्द्रमा अस्त हो जायगा, कमल की कान्ति नष्ट हो जायगी मणियों के प्रकाश को अन्धकार समाप्त कर देगा तब मैं अपने प्रकाश से संसार को प्रकाशित करूंगा कवि कहता है कि दूरमेतत्। सविता में विज्ञापन ऐसा ही तो है।

उपवेदादि का अध्ययन तो परीक्ष्य हो सकता है परन्तु निर्विकार चिन्तन परीक्ष्य-परीक्षा का विषय बन ही नहीं सकता है। निर्विकार चिन्तन की दो अवस्थायें हैं। एक आन्तरिक और दूसरी बाह्य। निर्विकार चिन्तन की आन्तरिक अवस्था अत्यधिक समय एवं कष्ट साध्य है और बाह्य अवस्था अत्यल्प समय और स्वल्प कष्ट साध्य है। इसका फल सद्यः समुपलब्ध हो जाता है।

प्रश्न-निर्विकार चिन्तन की बाह्य अवस्था से कैसे सद्यः फल समुपलब्ध हो जाता है?

उत्तर-निर्विकार चिन्तन को दिखाने वाला अपने चारों ओर अग्नि जलाता है, कोई भूमि में गड्ढा खुदवा कर उसमें दबता है, कोई एक पैर से खड़ा होकर अपनी साध का ढिंढोरा पीटता है और कोई अनेक प्रकार से समाधि-सम अपने अनेक चित्र प्रकाशित करता है। इस बाह्य व्यापारसे ही मानव समाज को अपनी ओर सद्यः आकृष्ट कर लेता है। तालाब में बगुला की बाह्य वृत्ति पर ही तो श्री रामचन्द्र-जी आकृष्ट एवं मुग्ध हो गये थे। अशास्त्रवित् आडम्बरी कुछ लोग साध साधना, समाहित और आत्मानुभूति आदि पद प्रयोग अपने विषय में करते हैं और बाह्य अवस्था भी प्रकट करते हैं। यह सब लोकवंचनाय विहितकर्मानुष्ठानं दम्भ ही है। ये सब पद शास्त्रीय हैं इसलिये अत्यन्त उपादेय हैं परन्तु इन पदों का वाक्यार्थ उस व्यक्ति में घट सकता है या नहीं, चिन्त्यमेतत्।

प्रश्न-इतनी बात तो समझ में आगई परन्तु उन्होंने तो बड़ा लम्बा उत्तर दिया है। सारे ही उत्तर को समझाओ।

उत्तर-सारे उत्तर को सुनाओ। मैं समझाने का यत्न करूंगा। पूरा उत्तर यह है:—

१—चार वस्तुयें हैं, जो प्रत्येक वेद मन्त्र से सम्बन्ध रखती हैं ऋषि, देवता, छन्द और स्वर।

२—ऋषि और छन्द का मन्त्रार्थ के साथ निश्चय ही कोई सम्बन्ध नहीं है।

३—हां, देवता और स्वर किसी सीमा तक मन्त्रार्थ खोलने में सहायक हैं।

४—किन्तु वेद मन्त्रों का वास्तविक अर्थ निर्विकार चिन्तन, आत्मानुभूति और अन्तः श्रवण के द्वारा ही प्रकट होता है।

५—प्रत्येक मन्त्र का देवता (विषय) प्रत्येक मन्त्र में निहित है।

६—जनसाधारण ही नहीं, विद्वज्जन भी वेद मन्त्रों का पाठ एक श्रुति में करते हैं। उदात्त, अनु-दात्त और स्वरित का पूर्ण ज्ञान कोई विरला ही रखता है। तथापि—

७—उपर्युक्त चारों बातें वेद भाष्यकारों के लिये उपयोगी हैं और अपने वेद व्याख्या-ग्रन्थों में मैंने उनका यथावत् उपयोग किया है।

८—बादामों में छिलकों का जितना उपयोग है, उतना ही उपयोग वेदों में ऋषि, देवता, छन्द और स्वर का है। सेवन बादाम की गिरी की जाती है छिलके नहीं। गिरी का सेवन कराने के लिये गिरी से छिलकों को अलग करना पड़ता है।

९—वेद की व्याप्ति में महत्व वेद मन्त्रों में निहित शिक्षाओं का ही है।

१०—मेरा लक्ष्य संसार को वेदों की गिरी का सेवन कराना है।"

इस उत्तर में सत्यांश तो केवल इतना ही है कि वेद मन्त्रार्थ में देवता और स्वर की उपादेयता स्वीकार करली है। शेष उत्तर में तो अन्तर्द्वन्द्व, अतथ्य, स्वात्मश्लाघा और अन्त में तो साध्य-साधन-प्रकारानभिज्ञता का प्रचुर परिचय प्रदान-कर दिया है।

वान्ताशन-त्यक्त का पुनः ग्रहण करना वान्ताशन कहलाता है। द्वितीय अंक की पंक्ति को ७ अंक की पंक्ति से मिलाकर पढ़ने पर वान्ताशन स्पष्ट प्रतीत होता है। ४ चतुर्थ अंक वाली पंक्ति भी द्वितीय अंक वाली पंक्ति का समर्थन करती है। अर्थात् ऋषि और छन्द का मन्त्रार्थ के साथ निश्चय ही कोई सम्बन्ध नहीं है तो आपने अपने वेद व्याख्या ग्रन्थों में मैंने उनका (ऋषि, छन्द, देवता और स्वर) यथावत् उपयोग किया है यह क्यों लिखा है। इसी का नाम तो वान्ताशन है।

प्रथम अंकवाली पंक्ति में भी "चार वस्तुयें हैं-जो प्रत्येक वेद मन्त्र से सम्बन्ध रखती हैं। ऋषि, देवता, छन्द और स्वर" चारों की उपादेयता स्वीकृत कर द्वितीय अंक और चतुर्थ अंक वाली पंक्ति में परित्याग करने को ही वान्ताशन कहा जाता है। इस प्रसंग में ध्यान देने योग्य एक अन्य बात भी है और वह यह है कि वास्तविक अर्थ निर्विकार चिन्तन, आत्मानुभूति और अन्तः श्रवण के द्वारा ही प्रकट होता है तो वेद व्याख्या ग्रन्थों में जो अर्थ किये होंगे वे अर्थ तो अवास्तविक ही होंगे। जब वेद व्याख्या ग्रन्थों में अवास्तविक अर्थ हैं तो सम्भवतया अगस्त सन् ५५ से सविता में धन याचना का सौन्दर्य सम्पन्न दीर्घकाय विज्ञापन क्यों प्रकाशित किया जा रहा है? क्योंकि वहां तो स्वरादि से काम लिया गया है।

स्वात्मश्लाघा-सविता में प्रकाशित विज्ञापन को पढ़ने से प्रतीत होता है कि स्वात्मश्लाघा की अतिशयोक्ति कहीं देखना हो तो यहां ही देखलें "३५ वर्षों के अनवरत कठोर अध्यवसाय, शान्त-गम्भीर साधना एवं गहन स्वाध्याय" 'जनता वर्षों से प्रतीक्षा कर रही थी" "अभूत पूर्व वेद भाष्य" "वेद पर आज तक ऐसा विस्तृत ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ"।

जिस समय सार्वदेशिक धर्मार्य सभा की अन्तरंग में इनके साथ विचार हुआ था तब न जाने ३५ वर्षों का अनवरत कठोर अध्यवसाय, शान्त गम्भीरसाधना और गहन स्वाध्याय कहां चला गया था। यह भी संसार के महान् आश्चर्यों में से एक है। उत्तर न दे सके, भूल स्वीकार की किन्तु वेद भाष्य करने बैठ गये।

इस विज्ञापन से यह निश्चय करना बड़ा ही कठिन है कि वेद भाष्य किया जा रहा है अथवा वेद विषयक कोई ग्रन्थ लिखा जा रहा है क्योंकि "वेद विषयक अभूतपूर्व ग्रन्थ" और "विदेह कृत वेद व्याख्या ग्रन्थ" "वेद पर आज तक ऐसा विस्तृत ग्रन्थ" "वेद का वास्तविक महत्व इस ग्रन्थ से प्रकाश में आयेगा।" इन उदाहरणों से तो यह प्रतीत होता है कि वेद विषयक अथवा वेद के प्रतिपाद्य विषय पर कोई अभूतपूर्व ग्रन्थ श्री स्वामी विद्यानन्द जी वेद संस्थान अजमेर ने लिखा है और उसके कई खंड हैं। यदि मेरा कथन सत्य है तो वेद भाष्य के नाम पर वेद भक्त जनता से धन क्यों मांगा जाता है। यदि कदाचित यह कहा जावे कि इस विज्ञापन में "वेद का सरलातिसरल भाष्य" "अभूतपूर्व वेद भाष्य" "वेद भाष्य की अपनी प्रति सुरक्षित" इन पंक्तियों के रहते हुये यह कदापि नहीं कहा जा सकता है कि वेद भाष्य नहीं किया जा रहा है। तब तो इसका स्पष्ट यह अभिप्राय हुआ कि वेद भाष्य और वेद विषयक अभूतपूर्व ग्रन्थ पृथक् २ हैं। वेद भाष्य और वेद पर आज तक ऐसा विस्तृत ग्रन्थ ये दोनों शब्द या वाक्य समानार्थक नहीं हैं। हां, निर्विकार चिन्तन में (यदयुक्तं तदेवयुक्तमिति निर्विकारचिन्तनमिति केषांचितमते) सब कुछ हो सकता है अर्थात् अयुक्त भी युक्त हो सकता है परन्तु यह सर्वतन्त्र नहीं, सम्भव है प्रतितन्त्र बन जावे।

श्री गणपति जी को जो उत्तर दिया है उससे भी यह व्यक्त होता है कि (ऋषि, देवता, छन्द और स्वर) वेद भाष्यकारों के लिये उपयोगी हैं और अपने वेद व्याख्या ग्रन्थों में "भाष्य और वेद व्याख्या ग्रन्थ भिन्न २ हैं। यदि एक ही होते तो" "मैंने अपने वेद भाष्य में" ऐसा लिखना चाहिये

था। अस्तु-प्रकृतमनुसरायः।

"अब साधारण ही नहीं, विद्वज्जन भी, वेद मन्त्रों का पाठ एक श्रुति में ही करते हैं, उदात्त, अनुदात्त, और स्वरित का पूर्ण ज्ञान कोई बिरला ही रखता है।"

गजवम्, गजवे, गजवानि-यह लिख कर तो गजब ढादिया। निर्विकार चिन्तन की अर्थी निकालदी क्योंकि निर्विकार चिन्तन में वेद पाठ करना और वेद भाष्य करना समान ही है। चौपटानन्द ने स्वत्तियाग पढ़ा इसका यह अर्थ होगा कि चौपटानन्द ने वेद भाष्य किया। धन्य हो कृपानाथ! इसी बुद्धि वैभव के आधार पर वेद भाष्य किया और वेद व्याख्या ग्रन्थ लिखा है क्या? पंचम अंक की पंक्ति को पाठक पढ़ें "प्रत्येक मन्त्र का देवता (विषय) प्रत्येक मन्त्र में निहित है"। जब प्रत्येक मन्त्र का विषय प्रत्येक मन्त्र में निहित है तो मन्त्रार्थ के साथ देवता के सम्बन्ध विच्छेद में कोई विनिगयना युक्ति होनी चाहिये। सम्भव है निर्विकार चिन्तन में ऐसा ही होता हो। अस्तु-प्रकृतमनुसराय

साध्य साधना अनभिज्ञता—

अष्टमांक की पंक्ति "बादाम की गिरियों के सम्यक बादाम के छिलकों का जितना उपयोग है उतना ही उपयोग वेदों में ऋषि, देवता, छन्द और स्वर का है।" इनके सारे उत्तर को पढ़ने पर प्रतीत होता है कि वेद मन्त्र, मन्त्रार्थ और वेद इन शब्दों का प्रयोग किया है परन्तु ये शब्द समानार्थक नहीं हैं और सम्बन्ध सहयोग और उपयोग शब्दों का प्रयोग किया किन्तु ये भी समानार्थक नहीं हैं।

बादाम—यह संज्ञा नाम तब तक रहेगा जब तक कि छिलके और गिरियां पृथक् २ न हो जावें। जब दोनों पृथक् २ कर दिये जाते हैं तो बादाम के छिलके और बादाम की गिरी ये दो नाम पड़ जाते हैं। यह ठीक है कि गिरी सेवन समय छिलके पृथक् कर दिये जाते हैं परन्तु क्या वेद मन्त्र का अर्थ करते समय या सेवन करते समय वेद मन्त्र से देवता (विषय) पृथक किया जा सकता है? कदापि नहीं, क्यों कि श्रीमान जी स्वयं ही लिख चुके हैं कि प्रत्येक मन्त्र का देवता (विषय) प्रत्येक मन्त्र में निहित है।

नवमांक ९ की पंक्ति में लिखा है कि "वेद की व्याप्ति में" इनको इस बात का तनिक भी ज्ञान नहीं है कि किस शब्द का प्रयोग कहां हो सकता है हां, सुन्दर एवं शास्त्रीय शब्द चयन अच्छा कर लेते हैं परन्तु शब्द प्रयोग समय अनभिज्ञता प्रकट हो जाती है। व्याप्ति शब्द दार्शनिक है और पारिभाषिक भी है। अविनाभाव को व्याप्ति कहते हैं। हेतु में इसका स्पष्ट प्रयोग प्रतीत होता है। इस प्रसंग में भी व्याप्ति शब्द का प्रयोग हो सकता है परन्तु निर्विकार चिन्तन में बादामों के छिलकों का उदाहरण देकर व्याप्ति शब्द के प्रयोग को असम्भव कर दिया है। व्याप्ति का सदा साहचर्य हेतु और उदाहरण से रहता है। जैसे घटादिकं न सकारणकं भावत्वात् कण्टक तैक्ष्ण्यवत् मयूरचित्रवद्वा। घटादि का कोई कारण नहीं है क्योंकि घटादि पदार्थ भाव वाले हैं। जिस प्रकार कांटों की तीक्ष्णता नहीं हैं और मयूर चित्र सकारण नहीं है क्योंकि वहां भावत्व है वैसे ही घटादि में भी भावत्व है अतएव घट भी सकारण नहीं है। पाठक यह ध्यान रखें कि यह पूर्व पक्ष है। व्याप्ति का शुद्ध स्वरूप यह है-वायवीयं त्वगिन्द्रियं गन्धादीनां मध्ये नियमेन स्पर्शव्यंजकत्वात् स्वेदोदबिन्द, शीतस्पर्शव्यंजकनवातवदिति। अर्थात् पांच कर्मेन्द्रिय और पांच ज्ञान की इन्द्रियां हैं। जिन इन्द्रियों के द्वारा कर्म किया जाय उन्हें कर्म इन्द्रिय कहते हैं। जिन इन्द्रियों से जाना जाय उन्हें ज्ञान इन्द्रिय कहते हैं। इन पांच ज्ञानेन्द्रियों में एक त्वक इन्द्रिय है। त्वक् इन्द्रिय का कारण वायु है और वायु का गुण शीत स्पर्श है। पसीना की बूंद के गिरने से जो शीत स्पर्श होता है उस शीत स्पर्श की अभिव्यंजन-जतलाने वाली त्वक् इन्द्रिय है। अथवा पंखे का वायु शीतल है यह अनुभव त्वक इन्द्रिय से ही हो सकता है। निष्कर्ष यह निकला कि जहां २ त्वक इन्द्रियत्व होगा वहां २ स्पर्शत्व भी होगा। और जहां २ त्वकइन्द्रिय न होगी वहां शीत का स्पर्श भी अनुभव न होगा। घ्राण इन्द्रिय के होने पर ही गन्ध ग्रहण, रसना इन्द्रिय के सद्भाव में ही रस

ग्रहण हो सकता है। यदस्ति, तदस्ति, यन्नैवं तन्नैवमिति। त्वक् इन्द्रिय के साथ शीतस्पर्श का अविनाभाव है और यही व्याप्ति का शुद्ध स्वरूप है।

बादाम की गिरियों के साथ छिलकों का अविनाभाव सदा साहचर्य नहीं है। जब बादाम की गिरी सेवन की जाती है तब छिलकों का सम्बन्ध नहीं रहता है। किन्तु मन्त्र और स्वरादि सम्बन्ध ऐसा नहीं है। वेद मन्त्र पक्ष, देवता साध्य, बादाम उदाहरण है। निर्विकार चिन्तन में हेतु होता ही नहीं है। अन्तः श्रवण में देवता और विषय समानार्थक है। यह ठीक भी है। "प्रत्येक वेद मन्त्र का देवता (विषय) प्रत्येक मन्त्र में निहित है" इसका यह स्पष्ट भाव है कि मन्त्र के साथ देवता का अविनाभाव है अर्थात् जहां मन्त्र है उसके साथ ही देवता (विषय) है। निर्विकार चिन्तन में अर्थ, देवता, विषय और शिक्षा समानार्थक हैं क्योंकि यह व्यवहार में देखा जाता है कि इस मन्त्र का यह अर्थ है अथवा यह मन्त्र यह शिक्षा देता है। अथवा इस मन्त्र का प्रतिपाद्य विषय यह है। मन्त्र के साथ देवता का साहचर्य है। उपवेदादि का जिसने अध्ययन नहीं किया है वह इस साहचर्य को न समझ सके वह दूसरी बात है। बादाम का उदाहरण यहां सर्वथा असंगत है क्योंकि गिरियों का छिलकों के साथ अविनाभाव सदासाहचर्य व्याप्ति नहीं है।

वेदों की गिरी का सेवन

निर्विकार चिन्तन में "गिरी" का अर्थ है शिक्षा परन्तु सेवन का अर्थ नहीं लिखा। इसलिये मुझे अपनी ओर से ही अर्थ करना पड़ेगा। प्रत्येक मन्त्र में देवता (विषय) शिक्षा निहित है उस शिक्षा को निर्विकार चिन्तन से लेखनी द्वारा व्यक्त कर (भाष्य कर) इदानीं तन जन को प्रदान करना ही सेवन कराना है। प्रकृत प्रकरण में सेवन शब्द उपयुक्त नहीं है क्यों कि प्रायः सेवन शब्द स्वाश्रय में प्रयुक्त होता है। कोई कहे कि मैं रोगी की सेवा करता हूं इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं निकल सकता है कि मैं रोगी का सेवन करता हूं। औषध का सेवन करना कहा जाता है न कि औषध सेवा। क्या कोई क्लर्क कह सकता है कि मैं कार्यालय का सेवन करता हूं। सेवन, सेवा, सेव्य और सेवक यद्यपि एक प्राकृतिक हैं परन्तु प्रत्यान्तर से भिन्नार्थक है।

एकादश अंकवाली पंक्ति के लिखने में तो निर्विकार चिन्तन सविकार हो उठा। "मेरा लक्ष्य संसार को वेदों की गिरी का सेवन कराना है" यहां पर वेद मन्त्र में निहित शिक्षा की समता गिरी से की गई है और वेद की समता छिलकों से ही हो सकती है न? वाहरे अन्तः श्रवण! चले थे गौ की प्रतिकृति बनाने परन्तु बना बैठे बन्दर। चले थे मन्त्रार्थ में स्वरादि परित्याग करने परन्तु वेद का भी (छिलकावत्) परित्याग कर बैठे।

श्री स्वामी विद्यानन्द जी वेद संस्थान अजमेर सुष्ठु शब्दों का संचय कर लेते हैं परन्तु उनका प्रयोग उचित स्थल पर नहीं कर सकते हैं। व्याप्ति शब्द यहां ठीक तो दिया परन्तु उन्हें यह मालूम ही नहीं की व्याप्ति का सम्बन्ध साध्य और उदाहरण दोनों में रहता है। यदि व्याप्ति का सम्बन्ध उभयत्र न हो तो वहां प्रयोग भी नहीं करना चाहिये।

वेदमन्त्रार्थ

वेद भाष्य करने के लिये उपवेदादि का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है और वेद भाष्य करने का यही प्रशस्त पुरातन प्रकार है। जिसने उपवेदादि का अध्ययन नहीं किया है और वेद भाष्य करता है वह वेद पर प्रहार करता है।

श्री स्वामी विद्यानन्द जी वेद संस्थान अजमेर से बड़े ही विनम्र शब्दों में निवेदन करता हूं कि आपका यह लिखना कि मन्त्रार्थ में उपवेदादि अध्ययन अथवा स्वरादि छिलकों के समान है यह दम्भ मिथ्याभिमान है। यदि आप इस दम्भ का दमन करलें तो आपको जैसा आप चाहते हैं वैसा ही विपुल लाभ होगा और मानव समाज का भी कुछ हित साधन होगा। अन्यथा वेद भक्त जनता से वेद भाष्य के नाम पर धन इकट्ठा करना उचित नहीं है।

व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध

सर्वज्ञ परमेश्वर की अध्यक्षता में कुछ व्यापक अटल नियम कार्य कर रहे हैं और उनको समझ कर उनके अनुसार चलने से ही मनुष्य का कल्याण हो सकता है। इन अटल नियमों की सत्ता सिद्ध करने के लिए—

'अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि ऋ० १। २४ १० तथा 'त्वं हि कं पर्वते न श्रितान्य प्रच्यु तानि दूलभ व्रतानि:' ऋ० २। २८। ८

आदि वेद मन्त्र उद्धृत किये जा सकते हैं। यह बात वैदिक भाव को समझने के लिये अच्छी तरह जान लेनी चाहिये कि ये नियम व्यक्ति समाज तथा राष्ट्र में समान रूप से कार्य कर रहे हैं। उदाहरणार्थ जैसे एक व्यक्ति को अच्छे या बुरे कर्म का फल किसी न किसी रूप में अवश्य ही मिलता है, उसी प्रकार समाज और राष्ट्र को भी अच्छे बुरे कार्यों का परिणाम अवश्य ही भोगना पड़ता है। जब ये सामाजिक और राष्ट्रीय पाप बहुत बढ़ जाते हैं अर्थात् जब लोग मोह माया में फंसकर स्वार्थ साधन में दिन-रात तत्पर हो जाते हैं और धनमान के मद से मस्त होकर दीनों की सहायता तथा पतितोद्धार रूपी कर्त्तव्य के पालन से भी मुँह मोड़ बैठते हैं उस समय प्राय: भयंकर व्यापी रोग, भूकम्प, जलपूर (बाढ़) आदि के रूप में भगवान की ओर से उन्हीं अपने राष्ट्रीय पापों का फल मिलता है ताकि मनुष्य सावधान होकर पुनः धर्म्म मार्ग पर चलनेका निश्चय करले।"

(वैदिक कर्त्तव्य शास्त्र पृ० ५१-५२)

धर्म्म प्रधान भारतीय समाज-व्यवस्था

मनुष्य स्वभाव से ही एक सामाजिक जीव है और सदा संघ बनाकर रहने की इच्छा करता है। मनुष्य समाज और पशु पक्षियों की संगठन व्यवस्था में जो अन्तर है वह यह है कि पशु समाज का संगठन प्राकृतिक बंधनों द्वारा संचालित होने से परतंत्र है किन्तु मानवीय समाज का संगठन बौद्धिक होने के कारण स्वतन्त्र और प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के लिये है। इस प्रकार प्राणी मात्र एक प्रकार की विश्व-समाज-व्यवस्था (कोस्मस सोशियालिस्टिक) के अन्तर्गत आ जाते हैं जिसका एक अंग, जो अपने को प्रकृति के अधीन विवश पाता है वह पशु है और दूसरा प्रकृति को अपने वश में करने की क्षमता रखने वाला मानव है।

मानवीय समाजकी व्यवस्थाकी सबसे छोटी इकाई 'परिवार' है इसमें स्त्री पुरुष और उनके बच्चों का समावेश होता है। इससे बड़ी इकाई समाज होता है।

इस प्रकार समाज एक संघ-संस्था, एक संगठन है। मानव जाति के आनुक्रमिक इतिहास (एन्थ्रोपोलौजी) के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस सामाजिक संगठन की आवश्यकता के मूल में तीन मुख्य तत्व हैं—अर्थ, काम और धर्म।

संगठन की दृष्टि से भी तीन प्रकार की समाज

व्यवस्थाएं पाई जाती हैं—पुरुष प्रधान, स्त्री प्रधान और ईश्वर प्रधान। पुरुष प्रधान समाज-व्यवस्था में 'अर्थ' प्रधान होता है। स्त्री प्रधान समाज-व्यवस्था में 'काम' प्रधान होता है और ईश्वर-प्रधान समाज-व्यवस्था में 'धर्म्म' प्रधान होता है।

कीड़ों, मकोड़ों अर्थात् चीटियों मधु मक्खियों आदि की सामाजिक व्यवस्था के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वह 'नारी प्रधान' है जैसाकि 'रानी चींटी' और रानी-मधुमक्खी (क्वीन आंट और क्वीन बी) के उदाहरणों से स्पष्ट होता है। पशुओं में जो सामाजिक व्यवस्था है वह 'पुरुष प्रधान' है, जैसा कि हाथियों के झुंड के सरदार 'पुरुष हाथी' के उदाहरण से स्पष्ट है।

किन्तु जब मनुष्य समाज की संघ व्यवस्था का प्रश्न आता है तब उसके सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। पर इतना तो स्पष्ट है कि मानव-जाति के इस समय, इस पृथ्वी पर जो विभिन्न सामाजिक संगठन 'राजनीतिक राष्ट्रों' के रूप में हमारे सामने मौजूद हैं उनका सूक्ष्म अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि इस समय कुछ राष्ट्रों का संगठन पुरुष प्रधान (अथ प्रधान) हैं। इनमें ब्रिटेन और अमेरिका प्रमुख हैं। वहां पर प्रत्येक व्यक्ति का सामाजिक स्तर उसके चारित्रिक गुणों के आधार पर तय नहीं किया जाता किसी व्यक्ति के पास सत्ता और सम्पत्ति कितनी है इस बात पर ही उसका समाज में स्थान निर्दिष्ट होता है। कुछ राष्ट्र 'स्त्री प्रधान' (काम प्रधान) हैं। वहां पर व्यक्ति की श्रेष्ठता का माप दंड उसकी 'विलासिता' है। ऐसे राष्ट्रों में फ्रांस और इटली आते हैं किन्तु कुछ राष्ट्रों का समाज-संगठन 'धर्म्म प्रधान (ईश्वर प्रधान) है। इन राष्ट्रों में व्यक्ति का सामाजिक स्तर उसकी सत्ता, सम्पत्ति और भोग विलास की क्षमता नहीं किन्तु उसका चरित्र, शील संयम, त्याग, तप और ध्येय निष्ठा है। ऐसे राष्ट्रों में भारत प्रमुख और समस्त राष्ट्रों में प्रमुखतम है।

(श्री पांडुरंग वैजनाथ शास्त्री आठवले सिद्धान्त पृ० ३०८)

बर्नाडशा और वैदिक धर्म्म

एक ईसाई भिक्षुणी (नन) लारेंशिया से बर्नार्डशा की बड़ी मित्रता थी, उससे उनका बराबर पत्र व्यवहार होता रहता था। जब उनकी एक पुस्तक जिसका नाम है 'ब्लैक गर्ल इन सर्च आव् गाड (काली लड़की ईश्वर की खोज में) प्रकाशित हुई तो बहिन लारेंशिया बहुत बिगड़ गईं और उन्होंने शा को पत्र लिखना बंद कर दिया। इस पर उन्होंने उस पुस्तक के प्रूफ का एक पन्ना फाड़कर लारेंशिया के पास भेजा, जिस पर लिखा था कि स्टैण्डब्रूक मठमें रहने वाली भिक्षुणियों की, विशेषकर बहन लारेंशिया की प्रार्थनाओं से मुझे इसकी प्रेरणा मिली, तुम मेरे लिये प्रार्थना करती रहो।" उनकी एक दूसरी पुस्तक निकली, जिसमें यह वाक्य था कि 'ईश्वर मेरे माता और पिता दोनों हैं।" इस पर भी बहिन लारेंशिया बिगड़ीं क्योंकि ईसाई धर्म्म में ईश्वर की पुरुष के ही रूप में मान्यता है।

एक बार उन्होंने लिखा था कि 'भारतीयों के तो असली चेहरे हैं और हमारे केवल नकली'। एक दूसरे स्थल पर उनका कहना है कि 'एक मात्र वैदिक धर्म्म ही ऐसा है जिसमें एक ही ईश्वर की अभिव्यक्ति मानी जाती हैं।"

भारत से जाकर १९३३ में उन्होंने अपने एक पादरी मित्र वाल्टर्स को पत्र में लिखा था कि "वैदिक धर्म्म का यह मन्तव्य है कि सबके ऊपर कोई ऐसा ईश्वर अवश्य है जिसका व्यक्तित्व व्यक्त नहीं किया जा सकता (अर्थात् वह निराकार है—संपादक) इसलिये संसार भर में हिन्दू धर्म्म सबसे अधिक सहिष्णु है। यह धर्म इतना लचीला और सूक्ष्म है कि उसमें मूर्ति में विश्वास न रखने

वाले और कट्टर मूर्तिपूजक दोनों के लिए स्थान है।'

इसी पत्र में उन्होंने इस्लाम की भी चर्चा की है। वे लिखते हैं इस्लाम इससे भिन्न प्रकार का है, वह बड़ा ही असहिष्णु है। यदि उस मत का मानने वाला किसी काफिर की गर्दन काटदे तो ऐसा करने से वह काफिर को नर्क भेजेगा और स्वयं स्वर्ग जायगा' ईसाई मत को भी उन्होंने नहीं छोड़ा। वे लिखते हैं कि 'कैथलिक और प्रोटेस्टेण्ट, दोनों शक्ति हाथ में आ जाने पर एक दूसरे के विनाश पर तुल जाते हैं, पर वैदिक धर्म्म ऐसा नहीं करता। सभी मतों में संकीर्णता है केवल वैदिक धर्म्म ही उदार है। सभी को अपने में ले लेने की उसमें शक्ति है। उस शक्ति के कारण ही युगों के थपेड़े सहते हुए भी वैदिक धर्म्म आज जीवित है। जब कि संसार के प्राचीन प्रागैतिहासिक मतों एवं संस्कृतियों का आज पता तक नहीं।"

ईसाइयों को महायुद्धों में रत देखकर उन्होंने लिखा था कि 'जो दया के ईश्वर' का पूजन करते और 'शान्ति के राजपुत्र' के अनुयायी बनते हैं, उन्होंने क्या किया ? अपने अतिरिक्त उन्होंने किसी के प्रति दया नहीं दिखलाई। जहां २ 'शांति के राजकुमार' के इन अनुयायियों के पद पहुंचे वहां वहां से वह दूर ही भागती गई।"

(टाइम आव शिकागो २०-८-५६ के अंक में प्रकाशित श्री के पत्रों के अंश)

आदर्श दिन-चर्या

जब ३ घन्टे रात्रि रहे तब उठ बैठना चाहिए। शौचादि क्रिया से निवृत्त होकर कुछ भ्रमण शुद्ध देश में करें जहां वायु शुद्ध हो।

एकान्त देश में जाकर गायत्री मन्त्र आदि का अर्थ सहित विचार करके परमेश्वर की स्तुति करे। फिर प्रार्थना करें कि 'हे परमेश्वर ! आपकी कृपासे हम पवित्र हों और धर्म तथा अच्छे गुणों को ग्रहण करने में सदैव तत्पर रहें। आपकी कृपा से ही जो अच्छा होता है सो होता है। सब जीवों पर आप ऐसी कृपा कीजिए कि मनुष्य मात्र आपकी आज्ञा से सद्गुण ग्रहण करें और आपके स्वरूप में ही विश्वास करके स्थित होवें।"

इसके पश्चात् उपासना करें। सर्व इन्द्रियों प्राण व जीवात्माओं को एकत्र स्थिर करके समाधिस्थ होकर अनन्त परमेश्वर के आनन्द में मग्न हो जावें। चिरकाल ऐसा परमेश्वर का ध्यान करें।

कनिष्ठ बुद्धि वाला अग्नि होत्रादि कर्म कांड करे। मध्यम बुद्धि वाला योगाभ्यास करे। तीव्र बुद्धि अथवा शुद्ध हृदय हों सो विचार व ब्रह्म विद्या में तत्पर रहे जो ज्ञान कांड कहाता है विवेक आदि जिसके साधन हैं।

कर्म कांड और उपासना कांड ज्ञान प्राप्ति के वास्ते ही हैं।

जब एक घंटा दिन चढ़ आए उसके पीछे एक घंटा तक गृह सम्बन्धी और जो अन्य अपने करने का काम हो वह भी उसी समय करे। जिस व्यवहार में जैसी प्रतिज्ञा करे उसको वैसी ही पूरा करे। प्रतिज्ञा हानि से अर्थात् जैसे कहे वैसा न करने से मनुष्य के सब व्यवहार छिन्न भिन्न नष्ट हो जाते हैं। जो व्यवहार जिस वक्त करने का हो उसको वैसे ही उसी वक्त करे।

जितने पशु और पदार्थ अपने अधीन हों उनका यथावत् पालन करे। जितने कुटुम्ब के जीव हों या घर के पदार्थ हों उनकी यथा योग्य रक्षा करें।

घर के जितने काम हों सब स्त्री के ऊपर सौंपें और जो अपना व्यवहार हो वह धर्म युक्त करें अधर्म से नहीं। १० बजे के समय भोजन करें। वैदिक शास्त्र का रीति से विचार और संस्कार करके जो जिसका व्यवहार हो उसको यथावत् करें।

(शेष अगले पृष्ठ में)

विदेश प्रचार

ब्रिटिश गायना

श्री ब्र० उषर्बुध जी

श्री ब्रह्मचारी जी १८ फरवरी को सुरीनाम निकेरी प्रान्त के दौरे पर गए। वहां पर ५०० व्यक्तियों ने उनका स्वागत किया। वहां १० दिन ठहर कर विविध स्थान पर २१ व्याख्यान दिए। उच्चाधिकारी, कमिश्नर, अध्यापक, गवर्नर के सहायक, हालैंड पार्लेमेन्ट के सदस्य प्रभृति भाषणों में आते रहे। स्कूलों और विविध सांस्कृतिक स्थानों पर भी व्याख्यान हुए। समया भाव के कारण आर्य प्रतिनिधि सभा सुरीनाम डचगायना के मुख्य स्थान पारामारिवो जाना न हो सका।

१ से ३ मार्च तक ब्रिटिश गायना के मैकोनी महैया मंडल के लिए दल के मंडल पति के प्रबंध से ३ दिन का आर्यवीर दल शिविर लगा। यह उस उपनिवेश में दल का दूसरा शिविर था जिसमें ४५ वीरों ने शिक्षण प्राप्त किया। तीसरा शिविर १८ अप्रैल से आरम्भ हो रहा है, मैकोनी शिविर दीक्षान्त में अमेरिकन एर्यन लीग के मंत्री श्री पीताम्बर दीन दयाल का भाषण हुआ।

श्री पं० जी जार्ज टाउन रेडियो से प्रायः वेदोपदेश देते हैं। पारामारिबो रेडियो के लिऐ भी निकेरी में एक सन्देश टेपरिकार्ड किया गया था।

❀

जब २ घंटा दिन शेष रहे तब व्यवहार आदि कार्यों को छोड़ करके शारीरिक शौच आदि कर्म करें। एकान्त में जाकर परमेश्वर की यथोक्त स्तुति प्रार्थना व उपासना करें। जिसने अग्निहोत्रादि कर्म करना हो सो करें।

सूर्य से एक घंटा पहले सायंकाल का भोजन करें। फिर एक प्रहर रात्रि जब तक न आवे तबतक व्यवहार का काम करें। रात्रि शयन के लिए २ प्रहर (६ घंटे) का समय निश्चित किया है।

प्रत्येक मनुष्य को अपनी स्त्री व कुटुम्ब को सदैव प्रसन्न रखने का प्रयत्न करना चाहिए। अपने सन्तानों को विद्या आदि गुण ग्रहण कराने के वास्ते ब्रह्मचर्याश्रम और वीर्यादि की रक्षा करनी चाहिए। कपट और छल को छोड़कर प्रसन्नता पूर्वक मनुष्य मात्र से मिलाप रखे और एक दूसरे की सहायता करे। सबका हित चाहे। अहित किसी का न चाहे।

दीन और अनाथों का पालन करें। नित्य सत्पुरुषों के संग से बुद्धि और नम्रता आदि गुणों को ग्रहण करे और उनका अभ्यास करें। किसी से हठ दुराग्रह और अभिमान युक्त होकर वादविवाद न करे।

(आदि सत्यार्थप्रकाश १८७५ स्टार प्रेस बनारस से मुद्रित श्री राजा जयकृष्ण दास द्वारा प्रकाशित)

(१)

अनुपम साधना

स्वामी (दयानन्द) जी की स्मरण शक्ति बड़ी प्रबल थी। दो एक बार ही के सुनने पर पाठ स्मरण कर लेते थे। उनकी धारणा शक्ति के कारण दंडी जी उनपर प्रसन्न थे। परन्तु एक दिन अष्टाध्यायी की कोई प्रयोग सिद्धि कुछ ऐसी क्लिष्ट आई कि स्वामी जी को अपने निवास स्थान पर जाकर विस्मृत हो गई। पूर्व ऐसा कभी न हुआ था इसलिए स्वयं उन्हें बड़ा खेद हुआ। अन्त में गुरु जी से आकर विस्मृत प्रयोग सिद्धि पूछी। विरजानन्द जी ने दयानन्द जी को पाठ कभी बार २ न बताया था इसलिए कुछ खिन्न कर कहा जाओ स्मरण करके आओ। यहां बार २ उसी पाठ को पढ़ाने के लिए नहीं बैठे हैं। दो तीन दिन तक श्री दयानन्द जी गुरु जी से प्रार्थना करते रहे, महाराज कृपा करके एक बार फिर बता दीजिए। मैं सारा बल लगा चुका, पर क्या करूं वह पाठ स्मरण ही नहीं आता परन्तु विरजानन्द जी ने दुबारा प्रयोग सिद्धि न बताई और अन्त में खिन्न कर दयानन्द जी को कहा 'हमने एकबार तुम्हें कह दिया है कि जब तक पहले का पढ़ाहुआ पाठ न सुना लोगे तुम्हारा पाठ आगे नहीं चलेगा। अब तुम्हें कहा जाता है कि यदि वह प्रयोग तुम्हें स्मरण न हो आवे तो यमुना में भले ही डूब मरना पर मेरे पास न आना, स्वामी जी गुरु देव के चरण स्पर्श करके वहां से चले आए और विश्राम घाट के समीप; सीता घाट के शिखर पर आरूढ़ होकर विस्मृत प्रयोग सिद्धि को स्मृति-पथ पर लाने के लिये मस्तिष्क पर बल देने लगे। उस समय उन्होंने प्रण कर लिया कि यदि आज सायंकाल तक प्रयोग स्मरण न हो आया तो अवश्य मेव यहीं से यमुना में कूद पड़ूंगा और अपने शरीर को मगर आदि जलचरों का आहार बना दूंगा। इस भीषण प्रतिज्ञा को धारण करके स्वामी जी विस्मृत प्रयोग के स्मरण करने में इतने लीन हुए इतनेएकाग्रहुए किउन्हें देश और कालका भी ध्यान न रहा। वे अपनी देह को भी भूल गये। उन पर स्वप्न की सी अवस्था आ गई। उसमें उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानो कोई व्यक्ति लम्बी प्रयोग सिद्धि सुना रहा है। जब वे सारी प्रयोग सिद्धि सुन चुके तो सचेत हो गए और उन्हें ऐसा लगने लगा कि मानो अभी सोकर उठे हैं। स्वामी जी की प्रसन्नता का पार न रहा। दौड़े हुए गुरु चरणों में आए और अथ से इति तक सारी प्रयोग सिद्धि सुना दी। दयानन्द की धारणा और धैर्य को देखकर विरजानन्द जी प्रेम से पुलकित हो गये। उनकी आंखों में हर्ष के आँसू डबडबा आए। गुरु ने वत्सलता से शिष्य को कण्ठ से लगा लिया और भूरि २ आशीर्वाद दिए।

२

ब्रह्मचर्य की साधना

एक दिन श्री स्वामी जी मथुरा में यमुना के

तट पर ध्यान में मग्न बैठे थे। एक स्त्री स्नान करने आई। उसने देखा कि सामने एक परमहंस पद्मासन लगाये समाधिस्थ है। श्रद्धावती देवी ने भक्ति भाव से अतिनिकट आकर, स्वामी जी के चरणों पर सिर रखकर नमस्कार किया। भीगे हुए शीतल वस्त्र के स्पर्श का अनुभव करके स्वामी जी ने ज्यों ही नेत्र खोले तो उन्होंने पैरों पर एक माई का सिर पड़ा देखा। वे चौंक पड़े और माता २ कहते हुए सहसा उस स्थान से उठ गये। जहां तक बन पड़ता स्वामी जी स्त्री स्पर्श नहीं किया करते थे परन्तु उस दिन एक स्त्री ने ध्यान दशा में उनके पाँव पर सिर रख दिया इसलिये वे वहां से उठ गोवधन की ओर जा निर्जन एकान्त स्थान में स्थित एक टूटे फूटे मन्दिर में तीन दिन और तीन रात निराहार ध्यान और चिन्तन में लीन रहे। चौथे दिन जब पाठ के लिए गुरु सेवा में उपस्थित हुए तो गुरु जी ने तीन दिवस की अनुपस्थिति के लिए उनकी भर्त्सना की और उसका कारण पूछा। स्वामी जी ने प्रायश्चित की कथा आदि से अन्त तक गुरु चरणों में निवेदन कर दी। अपने शिष्य की व्रत-वार्त्ता सुनकर श्री विरजानन्द जी को प्रसन्नता से रोमाञ्च हो आया। अनेक साधुवाद देते हुए उन्होंने उनकी बड़ी प्रशंसा की।

३

महापुरुषों की उदारता

सन् १८६५ ई० की बात है। बंगाल में भीषण अकाल पड़ा था। लोग क्षुधा से व्याकुल होकर इधर उधर भाग रहे थे। अन्न कहीं दृष्टि गोचर न होता था। इसी समय वर्दमान में एक अत्यन्त दुर्बल दीन बालक ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के पास आया। उसने उनसे एक पैसा मांगा। बालक का मुंह सूखकर पीला हो रहा था, पर उसके मुँह पर एक ज्योति सी छिटक रही थी।

"मानलो मैं तुम्हें ४ पैसे दूं तो? विद्या-सागर ने उससे पूछा।"

'महानुभाव! कृपया इस समय उपहास न करें मैं बड़े कष्टमें हूं। बालक बोला।

'नहीं, मैं उपहास वा परिहास कुछ नहीं करता। बतलाओ, तुम चार पैसों से करोगे क्या?"

'दो पैसों से कुछ खाने की चीज खरीदूंगा और दो पैसे अपनी मां को दूंगा।'

'और मानलो मैं तुम्हें दो आने दूं तो? विद्या सागर ने पुनः पूछा।'

लड़के ने अपना मुंह फेर लिया और वहां से चलने लगा, पर विद्या सागर ने उसकी बांह पकड़ ली और कहा' बोलो।'

बालक के कपोलों पर आँसू टपक पड़े, उसने कहा 'चार पैसे से तो मैं चावल खरीद लूंगा और अवशेष अपनी माता को दे दूंगा।'

'और यदि तुम्हें चार आने दे दूं।"

'मैं दो आनों का तो दो दिनों के भोजन में उपयोग कर लूंगा और दो आने का आम खरीद लूंगा जिन्हें चार आने में बेचकर अपनी मां के तथा अपने जीवन की रक्षा करूंगा।'

विद्या सागर ने उसे एक रुपया देदिया और लड़का प्रसन्नता के मारे खिल उठा। वह आंखों से ओझल हो गया।

दो वर्ष के बाद विद्या सागर पुनः वर्दमान गए। एक बली युवा पुरुष अपनी दूकान से बाहर आया उसने उन्हें सलाम किया।

'श्रीमान्! क्या आप मेरी दूकान में क्षण भर बैठने की दया करेंगे? युवा बोला।

'मैं तुम्हें बिलकुल पहचान नहीं पाया, भाई! विद्या सागर ने कहा।'

लड़के की आंखों में आंसू उमड़ आए। उसने कहा महाराज! मैं वही लड़का हूं जिसे आपने मांगने पर १ पैसे की बजाय एक रुपया दिया था। आपके

उस रुपये की बदौलत ही यह बड़ी दूकान खड़ी हुई है।"

विद्या सागर ने उसे आशीर्वाद दिया और बड़ी देर तक उसकी दूकान में बैठे उससे बातें करते रहे।

४

सच्ची-शिक्षा

रविशंकर महाराज एक गाँव में सवासौ मन गुड़ बांट रहे थे। एक लड़की को वे जब गुड़ देने लगे, तब उसने इन्कार करते हुए कहाँ -'मैं नहीं लूंगी।'

'क्यों ? महाराज ने पूछा।

'मुझे शिक्षा मिली है कि यों नहीं लेना चाहिये।' तो कैसे लेना चाहिये ?

'ईश्वर ने दो हाथ तथा दो पैर दिये हैं, और उसके बीच में पेट दिया है। इसलिये मुफ्त कुछ भी नहीं लेना चाहिये। यह तो आप मुफ्त दे रहे हैं, मजदूरी से मिले तो ही लेना चाहिये,' महाराज को आश्चर्य हुआ। इसको ऐसी शिक्षा देने वाला कौन है यह जानने के लिये उन्होंने पूछा-'तुम्हे यह सीख किसने दी ?'

'मेरी मां ने।

महाराज उसकी माँ के पास गये और पूछा 'तुमने लड़की को यह सीख कैसे दी ?'

'क्यों महाराज ? मैंने इसमें नईबात क्या की? भगवान ने हाथ, पग दिये हैं, तब मुफ्त क्यों लेना चाहिये ?

'तुमने धर्म शास्त्र पढ़े हैं ?

'ना'

'तुम्हारी आजीविका किस प्रकार चलती है ?

'भगवान् सिर पर बैठा है। मैं लकड़ी काट लाती हूँ और उससे अनाज मिल जाता है। लड़की रांध लेती है। यों मजदूरी से हमारा गुजारा सुख संतोष के साथ निभ रहा है।

तो इस लड़की के पिता जी······ ······।

वह बहिन उदास हो गई कुछ देर ठहर कर बोली-'लड़की के पिता थोडी उम्र लेकर आये थे। जवानी में ही वे हमें अकेले छोड़कर चले गये। यद्यपि लगभग तीस बीघे जमीन और दो बैल वे छोड़ गये थे, तो भी मैंने विचार किया कि इस सम्पत्ति में मेरा क्या लेना देना है, मैं कब इसके लिये पसीना बहाने गयी थी ? अथवा यदि मैं पुरानी बुढिया होती या अपंग अथवा अशक्त होती तो अपने लिये सम्पत्ति का उपयोग भी करती। परन्तु ऐसी तो मैं थी नहीं। मेरे मन में आया कि इस सम्पत्ति का क्या करूं और भगवान ने ही मुझे यह सुझाव दिया कि यदि यह सम्पत्ति गाँव के किसी भलाई के काम में लगा दी जाय तो अच्छा हो। मैंने सोचा, ऐसा कौन सा काम हो सकता है-मेरी समझमें यह आया कि गाँव में जल की बहुत तकलीफ है, इसलिये कुआं बनवादूं। मैंने सम्पत्ति बेच दी उसमें मिली हुई रकम एक सेठ को सौंप कर उनसे कहा कि आप इन पैसों से एक कुआं बनवा दें।' सेठ भले आदमी थे। उन्होंने परिश्रम और कोर-कसर करके कुआं बनवा दिया और उसी रकम में से पशुओं के जल पीने के लिये खेल भी बनवा दी।'

इस प्रकार उस बहिन ने अपनी सम्पत्ति का हक छोड़ करके उसका सदुपयोग किया। उसे नहीं तो उसके हृदय को तो इतनी शिक्षा अवश्य मिली होगी कि 'मैं जो पति को ब्याही गई हूँ सो सम्पति के लिये नहीं ब्याही गई हूँ। इस प्रकार के मार्ग में आगे बढ़ने के लिये ही ब्याही गई हूं।" इस प्रकार की समझ तथा संस्कार से बढ़ कर और कौन सी शिक्षा हो सकती है?

महर्षि जीवन

मूर्ति पूजा अवैदिक है

एक दिन एक व्यक्ति ने पूछा 'आप महाभारत को मानते हैं या नहीं ? "स्वामी जी ने उत्तर दिया "हां मानता हूं।" उसने एक श्लोक पढ़कर कहा "इसका यह अर्थ है कि एकलव्य भील ने द्रोणाचार्य की मूर्ति सामने रखकर धनुर्विद्या सीखी थी।" इस पर स्वामीजी ने कहा "मैं यह कह रहा हूं कि वेद शास्त्र में कहीं प्रतिमा पूजन की आज्ञा नहीं है। आपने जो प्रमाण दिया है उसमें प्रतिमा पूजन की आज्ञा नहीं है। केवल यही लिखा है कि एक भील ने ऐसा किया था। उसको ऐसा करने की किसी ने शिक्षा न दी थी और न ही आप में वह कोई ऋषि मुनि था, जिससे उसका कर्म प्रमाण माना जाय। जैसे अंगरेज लोग चांदमारी करते हैं वैसे ही वह भी लक्ष्य भेद का अभ्यास करता था। कोई पूजन के लिए द्रोण की प्रतिमा उसने नहीं रखी थी। यदि कहो कि द्रोण की प्रतिमा पास रखने से वह धनुर्विद्या में निपुण हो गया तो यह भी मिथ्या है। धनुर्विद्या में निपुण होने का कारण मूर्ति न थी किन्तु एकलव्य का अभ्यास था।" यह उत्तर सुनकर वह थोड़ी देर तो चुप रहा परन्तु फिर उसने दूसरे ढंग से पूछा "यदि वेद में मूर्ति पूजा का विधान नहीं है तो निषेध कहां है ?" इस पर महाराज बोले "जब कोई स्वामी अपने सेवक को कहता है कि तुम पश्चिम को जाओ, तो अन्य तीन दिशाओं का निषेध अपने आप समझ लिया जाता है।" उस समय महाराज ने शास्त्रों के प्रमाणों से यह सिद्ध कर दिया कि वेद आदि धर्म ग्रन्थ ईश्वर के स्वरूप को निराकार, सर्वत्र परिपूर्ण और अमूर्त्त मानने की आज्ञा देते हैं। स्वामी जी ने उस व्यक्ति को बलपूर्वक कहा कि आप अपने पक्ष में वेद का एक तो प्रमाण दीजिये। परन्तु वह न दे सका।

देवता की छाया मूर्ति की छाया

लक्ष्मण शास्त्री ने कहा "स्वामी जी ! शास्त्र में कहा है कि गुरु, देवता, राजा और कोढ़ी मनुष्य की छाया को लांघना न चाहिये। पर ग्रन्थों में लिखा है कि देवता की छाया नहीं होती इसलिए यहां देवता की छाया से तात्पर्य मूर्ति की छाया से है।"

स्वामी जी ने कहा "जो आपने कहा कि देवताओं की छाया नहीं होती यह सत्य नहीं है। पूर्व काल में जब यजमान यज्ञ करते थे तो देवजन वहां आजाया करते थे। देवों और दैत्यों की लड़ाइयां भी हुआ करती थीं। उनमें देव मारे भी जाते थे। उनके देह न हो तो पूर्वोक्त क्रिया कैसे हो सकती है ? जहां देह होती है वहां छाया भी होती

है। इसलिए धर्म शास्त्र में देवता की छाया का उल्लंघन न करने की आज्ञा का तात्पर्य यह है कि देव जो विद्वान् हैं उनकी अवज्ञा न करनी चाहिए।"

वह व्यक्ति बीच में बोल उठा 'यदि जड़ वस्तुओं में देवत्व नहीं है तो हवन के समय अग्नि ही में आहुति क्यों दी जाती है? और जलादि भी तो तत्त्व हैं उनमें सामग्री आदि क्यों नहीं डाली जाती?" स्वामी जी ने कहा 'पांचो तत्वों में केवल अग्नि ही एक ऐसा तत्त्व है जिसमें डाली हुई आहुति भस्म हो जाती है इसीलिए इसमें हवन करते हैं। वेद की भी यही आज्ञा है परन्तु आप बताएं कि अग्निहोत्र रूप देव पूजन के साथ पत्थर पूजा का क्या सम्बन्ध है? मूर्ति को किसी भी शास्त्र में देव नहीं कहा गया है?" लक्ष्मण शास्त्री ने कहा 'ईश्वर सर्व व्यापक होने से मूर्ति पूजन में क्यों दोष मानते हो?" स्वामी जी ने कहा "जब ईश्वर सर्व व्यापक है तो मूर्ति में क्या विशेषता है जो उसी की पूजा की जाय और चेतन को छोड़कर जड़ पूजन में कोई महत्त्व भी नहीं है?"

प्रतिमा पूजन में क्या दोष है?

एक दिन श्रीयुत गंगा सहाय जी ने स्वामी से पूछा "प्रतिमापूजन में क्या दोष है?" स्वामी जी ने उत्तर दिया "वेदों की आज्ञा पर चलना धर्म है। वेदों में प्रतिमा पूजन की आज्ञा नहीं है इसलिए उनके पूजन में आज्ञा भंग का दोष है। पुराणों में जो मूर्तियों का पूजन लिखा है वह सब गप्प और असार है। जो यह कहते हैं कि अपनी भावना का फल होता है उनका कथन भी सत्य नहीं है। तुम बैठे चक्रवर्त्ती राजा बनने की भावना करते रहो तो इतने से सार्वभौम राजा नहीं बन सकोगे। भावना भी सच्ची होनी चाहिये।"

प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग

प्रयाग में वेदान्त-निष्क्रियवाद पर वाद विवाद होता था। एक साधु ने प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग की चर्चा छेड़ कर स्वामीजी से पूछा कि "इनका अभिप्राय क्या है?" स्वामीजी ने कहा "क्रियात्मक जीवन ही शुभ जीवन है। सारा दृश्यमान् जगत् अपनी नित्य क्रिया में निरन्तर प्रवृत्त है। हमारे शरीर में भी इस विशाल सृष्टि के अंश मात्र हैं। जब विराट देह में निरन्तर गति है क्रिया है और प्रवृत्ति है तो हम जो उसके एक अंग रूप हैं उनमें निवृत्ति और निष्क्रियता का होना असंभव है। आर्य धर्म में वेद विहित कर्मों का करना और निषिद्ध कर्मों का त्यागना ही निवृत्ति मार्ग है। जो इस मर्म को मन में धारण किए बिना निवृत्ति का राग अलापते हैं उन्हें वैदिक धर्म का अभी बोध ही नहीं हुआ है। जो लोग सत्योपदेश, प्रजा प्रेम और लोक हित के कार्यों को छोड़कर अपने को परम निष्क्रिय मानते हैं उनसे भी देह का भरण पोषण नहीं छूट सकता। सत्य और पर कल्याण के लिए अपने सुखों का त्यागना जीवन तक को लगा देना ही सर्वोत्तम त्याग है।"

—जिस देश में यथायोग्य ब्रह्मचर्य, विद्या और वेदोक्त धर्म्म का प्रचार होता है वही देश सौभाग्य शाली है।

—सुनीति, धर्म्म, सत्य और सच्चरित्रता आदि गुणों से अत्यन्त सहिष्णु महात्मा जो प्राचीन ऋषि हुए हैं, उन्हीं को अपने तपोबल के प्रभाव से वसु, रुद्र और आदित्य आदि की पदवियाँ मिला करती थीं। ऐसे ऋषि ही सच्चे पितर कहलाते थे और उनका आदर सत्कार करना ही पितृ यज्ञ कहलाता था।

—जिस धर्म्म को आप्त अर्थात् सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, परोपकारक पक्षपात रहित विद्वान मानते हैं वही सबको मन्तव्य और जिसको नहीं मानते वह अमन्तव्य होने से प्रमाण के योग्य नहीं है।

—दयानन्द सरस्वती

महिला जगत

पति पत्नी धर्म

पारस्परिक प्रेम और सद्भाव

ब्रह्मचर्य पूर्ण होने के पश्चात् जब विवाह हो जाता है तब स्त्री पुरुष एक स्थान पर रहते हैं उस समय परस्पर एकता का होना आवश्यक है। गृहस्थ एक राज्य है जिसका राजा पुरुष और मन्त्री स्त्री होती है। जब तक राजा और मन्त्री विद्वान् होने के पश्चात् एकमत होकर अपने २ धर्म का पालन नहीं करते तबतक राज्य की दशा ठीक नहीं होती और न राजा और प्रजा को ही सुख मिलता है। देश देशान्तरों में बदनामी होती है। शत्रु भी समय पाकर अपना कार्य पूरा करते हैं अर्थात् थोड़े दिनों में ही वह राज्य नष्ट हो जाता है। यदि पति पत्नी विद्वान् होकर परस्परिक प्रेम और सदभाव से गृहस्थ का प्रबन्ध नहीं करते तो वह गृहस्थरूप राज्य शीघ्र नष्ट हो जाता है। इसीलिए शास्त्रकारों ने स्त्री और पुरुष को यही आज्ञा दी है कि परस्पर पूर्ण आयु प्रीतियुक्त रह, पुरुषार्थ धन और श्रेष्ठ गुणों से युक्त रहकर एक दूसरे की रक्षा करते हुए धर्मानुकूल सांसारिक और पारलौकिक कार्यों को कर इस जगत् में नित्य आनन्द करें जैसा कि—

इषे राये रमस्व सहसे द्युम्न उर्जे अपत्याय।
सम्राडसि स्वराडसि सारस्वतौ त्वोत्सौ प्रावताम् ॥

और य० अ० १४ मन्त्र ८ में कहा है कि स्त्री पुरुषों को चाहिए कि स्वयंवर विवाह करके अति प्रेम के साथ आपस में प्राण के समान प्रियाचरण, शास्त्रों को सुनना, ओषधि आदि का सेवन और यज्ञ के अनुष्ठान से वर्षा करावें।

प्राणम्मे पाह्य पानम्मे पाहि व्यानम्मे पाहि चक्षुर्म उर्व्या विभाहि श्रोत्रम्मे श्लोकय अप: पिन्वौषधीर्जिन्वद्विपादवश्चतुष्पात्पाहि दिवो वृष्टिमेरय ।

जिस प्रकार श्रेष्ठ अर्थात् शिक्षित घोड़े युक्त रथ पर सुख के साथ अपने स्वामी को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाते हैं उसी प्रकार परस्पर प्रसन्न चित्त योग्य दो विद्वान गृहस्थ रूपी रथ के द्वारा अपने सब मनोरथों को पूर्ण करने में समर्थ होते हैं जैसा ऋग्वेद अ. ३ व १९ मं० ३ अ० ४ सू० ५३ मं० ४ में कहा है:—

जाये दस्तं मघवन्त्सेदु योनिस्त
दित्वा युक्ता हरयौ वहन्तु।
यदा कदा च सुनवाम् सोम-
मग्निष्ट्वा दूतो धन्वात्यच्छ ॥

ऋग्वेद अ० ३ अ० ४ व० २ मं०३ अ०५ सू० ५५ मं० ४ में कहा है कि जहां स्त्री और पुरुषों में

प्रभु भक्त दयानन्द और उनके आध्यात्मिक उपदेश

लेखक—आचार्य्य भद्रसेन
प्रकाशक—आदर्श साहित्य निकेतन
केसरगंज अजमेर

पृष्ठ सं० $\frac{२०\times३०}{१६}$ २०१

प्रारम्भ में प्रभुभक्त के दस लक्षणों का वर्णन करके महर्षि दयानन्द की अगाध और उच्च प्रभु भक्ति का उनके लेखों, उपदेशों और जीवन की घटनाओं के आधार पर प्रतिपादन किया गया है! सच्चे आस्तिक और आध्यात्मिक जीवन का स्वरूप क्या है और दिन प्रतिदिन के जीवन में भी उसके निर्माण के उपाय क्या हैं इन सबका महर्षि के विविध ग्रन्थों के अवतरणों के प्रकाश में विचार किया गया है। आत्मिक शान्ति और आध्यात्मिक प्रकाश के जिज्ञासुओं को यह पुस्तक लाभप्रद सिद्ध हो सकती है।

निरंजनलाल गौतम

प्रेम होता है वहां सब प्रकार के आनन्द रहते हैं। इस प्रेम की जड़ विद्या और धर्म ही है अर्थात् गृहस्थ में सुख तब ही प्राप्त होता है जब स्त्री पुरुष दोनों विद्वान् और धार्मिक हों। जैसा ऋग्वेद अ० २ अ० १ व ४ मं० १ अ० १८ सू० १६३ मं० ३ में लिखा है।

इसलिए हे स्त्री पुरुषों! तुम दोनों को ऐसा बत्तना चाहिए जिससे परस्पर भय नष्ट होकर आत्मा को दृढ़ता उत्साह और गृहस्थ में व्यवहार की सिद्धि से ऐश्वर्य बढ़े और वे दोषों तथा दुःख को छोड़कर चन्द्रमा के तुल्य आल्हादित हों।

य० अ० ६ मं० ३५ में लिखा है :—

मामेर्म्मा संविक्थाऽऊर्ज्जन्धत्स्वधिषणे वीड्वी सती वीडयेथा मूर्ज्जन्दधाथाम्। पाप्मा हतो न सोमः॥

य० अ० ३८ मं० ६ में लिखा है कि जैसा शब्दों का अर्थ के साथ वाच्य वाचक सम्बन्ध, सूर्य के साथ पृथ्वी का पृथ्वी का किरणों के साथ वर्षा का यज्ञ के साथ तथा ऋत्विजों का यजमान के साथ सम्बन्ध है वैसा ही पति पत्नी का सम्बन्ध है।

गायत्रं छंदोसि त्रैष्टुपछंदोसि द्यावा पृथिवी-भ्यांतत्वा परिगह्णाम्यंतरिक्षेणो पयच्छामि। इंद्राश्विन मधुनः सार घस्य घर्मंपात वसवो यजत वाट्। स्वाहा सूर्यस्य रश्मये वृष्टि वन ये॥

ईसा को जीवन स्फूर्ति कहां से मिली ?

(लेखक—श्री आचार्य नरदेव जी शास्त्री, वेदतीर्थ,)

पता नहीं ईसा को अपने जीवन में धार्मिक स्फूर्ति कहां से मिली, नोटोविच नामक एक पाश्चात्य विद्वान् तिब्बत गये थे वहाँ उनको दो एक ग्रन्थ मिले उसके आधार पर उन्होंने लिखा कि तिब्बत में ईसा आये थे और कुछ काल रहे थे।

ईसा के जीवन में १६ वर्षों का कुछ पता नहीं लगता कि ये वर्ष उन्होंने कहां बिताये। नोटोविच के कथन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि ईसा ने कुछ वर्ष तिब्बत में बिताये—यह अनुमान करना असगत न होगा कि वहां उन्होंने नालन्दा बौद्ध विद्यापीठ के विषय में सुना और वहाँ पहुंचे और वहीं उन्होंने भारतीय धर्म और भारतीय दर्शन का अध्ययन किया फिर अपने देश लौट गये और अपने धर्मतत्त्वों का उपदेश प्रारम्भ किया। उनके जीवन पर बौद्ध धर्म और भारतीय संस्कृति का बड़ा प्रभाव पड़ा।

जिन लोगों ने बाईबल का आद्योपान्त अध्ययन किया है वे स्पष्ट अनुभव करेंगे कि ईसा की शिक्षा-दीक्षा में भारतीय अंशों की भरमार है। उनके उपदेश करने का ढंग, उनके उपदेश सब के सब भारतीय उपनिषत् ग्रन्थों के उपदेश के ढंग के अनुकरण मात्र हैं।

उनके उपदेशों का सार यह है कि "मुझ पर विश्वास लाओ और मैं तुम्हें तारूंगा" यह और कुछ नहीं, यह गीता के उसी वाक्य का मथितार्थ है जिसको भगवान् कृष्ण ने अर्जुन के प्रति कहा है :—

सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहन्त्वा सर्वपापेभ्यो मोचयिष्यामि मा शुचः॥

अर्थात् हे अर्जुन, सब धर्मों को (त्रैगुण्य-विषयक व्यवहार जिन पर सत्व, रज, तम का प्रभाव पड़ता है) छोड़कर, तुम मेरी शरण में आ जाओ और निश्चय रक्खो, मैं तुम्हें सब पापों से मुक्त कर दूंगा।

प्रतीत होता है ईसा को जीवन की स्फूर्ति देने वाला यही श्लोक है। इसी के आधार पर उन्होंने अपने धर्म तत्वों की रचना की—उन्होंने गीतो-पवर्णित "धर्म" शब्द की व्याख्या को अपने सुभीते के लिये ढाला और प्रचार प्रारम्भ किया।

ईसा ने "सत्य" पर बल दिया।

ईसा ने "अहिंसा" पर बल दिया।

ईसा ने इस बात पर भी बल दिया कि वैर से वैर कभी नहीं मिटते अथवा शान्त नहीं होते—

बौद्ध धर्म की सत्य से असत्य को जीतने, क्रोध

को अक्रोध से शान्त करने, अपकार करने वाले के प्रति भी उपकार की भावना रखने, द्वेष को प्रेम से मिटाने आदि २ बातों पर बड़ा जोर दिया है। यह तात्कालीन बौद्ध धर्म का ही प्रभाव है। प्रस्तुत: ये तत्त्व बौद्धों से भी प्राचीन वैदिक काल के हैं— इस तरह हम देखते हैं कि ईसा के जीवन में १६ वर्ष का कहीं पता नहीं लगता कि इतने वर्ष कहां रहे, क्या किया, उसका निर्णय नोटोविच की खोज से लग जाता है। यह निश्चय करना कठिन है कि इन सोलह वर्षों में ल्हासा आदि में कितने वष रहे, नालन्दा में कितने वर्ष रहे इत्यादि !

इसमें सन्देह नहीं जब ईसा तिब्बत में अथवा नालन्दा में आये, रहे तब भारत में 'तक्षशिला' और 'नालन्दा' दो जगद्विख्यात विश्वविद्यालय थे जहाँ संसार भर के छात्र यहां आकर नानाविध विद्याएं तथा चरित्र शिक्षा सीख कर जाते थे। भारतवर्ष तो अनन्त काल से चरित्र शिक्षा तथा चरित्र निर्माण का केन्द्र रहा और निम्न मनुस्मृति का वाक्य तब भी चरितार्थ होता रहा।

एतद्देश प्रसूतस्य
सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्
पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

हे संसार के लोगो, तुम्हें कुछ सीखना हो तो यहां भारत में आओ और यहां के अग्रजन्मा ब्राह्मणों से विद्या, धर्म, नीति, चरित्र आदि की शिक्षा प्राप्त करो।

तक्षशिला में २०००० छात्र रहते थे और २००० (दो सहस्र) विविध शिक्षा देने वाले पण्डित विद्वान् रहते थे। नालन्दा में १०००० छात्र रहते थे और शिक्षा देने वाले अध्यापक थे १००० (एक सहस्र)।

ईसा तिब्बत आये हों और फिर पास ही बिहार में नालन्दा हो और वे वहां न आये हों, वहां न रहे हों, वहां अध्ययन न किया हो, और उस अध्ययन और भारतीय संस्कृति का उनकी आत्मा पर प्रभाव न पड़ा हो, ऐसा हो नहीं सकता।

यदि यही बात है तो ईसा मसीह ने अपने धर्म की प्रचार यात्रा में कहीं भी तो ल्हासा—तिब्बत जाने का, नालन्दा में रहने का, वहां शिक्षा-दीक्षा लेने का जिक्र नहीं किया यह ऐसा क्यों ?

इस प्रश्न का उत्तर तो हम नहीं दे सकते किन्तु हम यह कहते हैं कि यदि हम ईसा के प्रवचनों पर ध्यान डालें और इधर उधर की ऊपरी बात छोड़ देवें तो यह स्पष्ट ही है उन प्रवचनों पर भारतीय धर्म और संस्कृति की पूरी २ छाप पड़ी है।

मैंने समय २ पर ईसा के प्रवचनों को उपनिषदों के साथ मिलाया है और मैं निस्सन्देह कह सकता हूँ कि ईसा के प्रवचन उन्हीं वाक्यों के मधुर विस्तृत व्याख्यान हैं। जब मैं लाहौर में पढ़ता था, तब वहाँ एक प्रथा थी। वह यह कि वहां की क्रिश्चन मिशनरी सोसाइटी इण्ट्रैंस से लेकर एम ए. तक के उत्तीर्ण छात्रों को सुनहरी बाईबिल का बाईबल भेंट रूप में प्रस्तुत करती रही। मैंने बाईबल की सुमधुर इङ्गलिश पर मुग्ध होकर कई बार बाइबल को पढ़ा और इसी निर्णय पर पहुंचा कि ईसाई धर्म में जो अच्छे २ ऊंची प्रति के नीति तत्व एवं शिक्षाएं पहुंची हैं वह सब वैदिक धर्म के उच्चस्तर के नीति तत्वों के ही प्रतिबिम्ब हैं।

वैदिक धर्म प्रसार
और सूचनायें

हिन्दी रक्षा समिति पंजाब अम्बाला नगर

पंजाब में चल रहे हिन्दी रक्षा आन्दोलन को तीव्र गति देने तथा निकट भविष्य में सत्याग्रह के लिये क्षेत्र तय्यार करने के लिये हिन्दी रक्षा समिति के संयोजक श्री ना० दा० ग्रोवर एम. एस. सी. ने समिति की ओर से अपील की है कि हिन्दी प्रेमी तथा आर्य जन आन्दोलन को व्यापक बनाने में योग दें और आवश्यक सूचनाएं समिति के कार्यालय से मंगा लेवें।

शुद्ध हुए परिवार की समस्या

श्रीयुत ठा० झम्मनसिंह जी १९४७ में आर्य-समाज भरतपुर के द्वारा सपरिवार मुस्लिम मत को छोड़ कर हिन्दू धर्म में दीक्षित हुए थे। इनके साथ अनेक (नव मुस्लिम गद्दी) परिवार भी शुद्ध हुए थे जिनमें से बहुत से पुनः मुसलमान हो गए परन्तु उक्त ठाकुर महोदय अनेक कठिनाइयों और धमकियों को सहन करते हुए भी हिन्दू धर्म पर दृढ़ हैं।

वे अच्छे सम्पन्न किसान हैं। खेती के लिये पर्याप्त भूमि है। फलों का एक बड़ा बगीचा है। देन लेन का काम भी करते हैं। उनके ६ पुत्र और ५ पुत्रियां हैं। एक लड़का बी० ए० में पढ़ रहा है और दूसरा इन्टर में है। इसी भांति पुत्रियां भी पढ़ रही हैं। इनकी सहस्रों रुपये वार्षिक की आय है। उनके बच्चों के विवाहों की बड़ी समस्या है। पुत्रियों को तो हिन्दू जन लेने को उद्यत हैं परन्तु पुत्रों के लिये लड़कियाँ नहीं मिलती। उधर मुसलमान हुए इनके सम्बन्धी इन्हें कहते हैं कि दण्ड देकर मुसलमान बन जाओ अन्यथा सन्तानों के विवाह न हो सकेंगे। आर्यजनों को उनकी समस्या को शीघ्र से शीघ्र हल करने के लिये उद्यत होना चाहिये। ठाकुर महोदय का पता इस प्रकार है: -

श्री ठा० झम्मनसिंह आर्य
वैर बयाना दरवाजा (भरतपुर राजस्थान

--रामसहाय शर्मा विद्याभूषण
आर्य महोपदेशक आर्य प्रतिनिधि सभा,
राजस्थान जयपुर

महाविद्यालय ज्वालापुर

महा विद्यालय ज्वालापुर (सहारनपुर) के प्राण श्रीयुत आचार्य नरदेव जी शास्त्री ने एक विशेष परिपत्र निकाल कर जिसमें महाविद्यालय के इतिहास और सफलताओं का वर्णन है, आर्य जनता से उसकी आर्थिक स्थिति ठीक करने की अपील की है जिस पर पंजाब के विभाजन एवं जमींदारी प्रथा के उन्मूलन से विशेष दुष्प्रभाव पड़ा है। यह विद्यालय स्वर्गीय श्री स्वामी दर्शनानन्द जी द्वारा संस्थापित है। मुख्यतया संस्कृत शिक्षण की उच्चकोटि की आर्य संस्था के रूप में प्रसिद्ध है जहां निःशुल्क वा नाम मात्र के व्यय पर विद्याध्ययन किया जाता है। इस विद्यालय का सम्बन्ध संस्कृत कालेज बनारस से है।

सार्वदेशिक विरक्त आर्य संन्यासी वानप्रस्थ मंडल गोविन्द भवन दयानन्द वाटिका सब्जी मण्डी देहली

आर्य साधु मण्डल के प्रधान श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती ने एक विशेष परिपत्र के द्वारा आर्य जगत् को यह शुभ समाचार दिया है कि एकनेशिकाहिविनिका आदि उत्तम अंग्रेजी ग्रन्थों के रचयिता श्री स्वामी भूमानन्दजी सरस्वती महर्षि दयानन्द रचित भाष्य सहित ऋग्वेद का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद कर रहे हैं। ९०० पृष्ठ फुलस्केप लिखे जा चुके हैं। प्रथम मण्डल के २४ सूक्त हो गये हैं। २० सूक्तों का भावार्थ सहित संक्षिप्त अनुवाद १५० पृष्ठों में लिखा गया है। प्रथम मण्डल के २० सूक्तों का ग्रन्थ लगभग ४५० पृष्ठों का होगा जिसकी छपाई का आयोजन हो रहा है। मूल्य ५॥) होगा। डाक व्यय पृथक। जो पूर्व ही रुपए भेज कर ग्राहक बनेंगे उन्हें उपर्युक्त कार्यालय में ४॥) में ही ग्रन्थ दिया जायगा।

(यह प्रयास स्तुत्य है आर्य समाज की एक बहुत बड़ी कमी को पूर्ण करने वाला है। अनुवादक महोदय की अंग्रेजी योग्यता और सिद्धान्त मर्मज्ञता असंदिग्ध है—सम्पादक)

आर्यसमाजों के विविध समाचार

शिवगंज में स्थानीय तहसील के अधिकारियों के द्वारा १८-३-५७ को पुलीस के संरक्षण में आर्य ध्वज का घोर अपमान हुआ:—शिवगंज समाज ने नगरपालिका से एक भूमि का भाग किराये पर लेकर उसमें आर्य वीर दल की व्यायामशाला स्थापित की। उस स्थानको तहसीलने अन्धाधुन्धीमें गैर कानूनी रूप से नीलाम कर दिया। जब बोलीदार कब्जा करने लगा तब वीर दल के सेवकों ने तथा नगर निवासियों ने इसका विरोध किया। इस पर तहसील की हठधर्मी से स्थान का सामान नष्ट भ्रष्ट किया गया और ओ३म् ध्वज का भी अपमान किया गया। उच्च राज्य कर्मचारियों को मामले की रिपोर्ट की गई है। न्याय प्राप्ति का पूरा २ यत्न किया जा रहा है।

—आर्य समाज भोई वाड़ा परेल बम्बई का १९ वां वार्षिकोत्सव १४ से १७ मार्च तक समारोह हुआ। प्रसिद्ध व्याख्याताओं ने भाग लिया। इस अवसर पर श्री ताराचन्द जी गुप्त मिठाई वाले लाल बाग (बम्बई) निवासी ने ५०१) का दान दिया। उत्सव की सफलता का श्रेय अधिकारियों के अतिरिक्त श्री डा० महेन्द्रकुमारजी शास्त्री प्रिंसिपल पोद्दार आयुर्वेदिक कालेज, श्री भगवान जी भाई हीरा भाई पटेल श्री परमानन्दजी कराची वाले श्री ठा० चन्द्रभानुसिंह, श्री ठा० राजदेव सिंह जी को भी है। बृन्दाप्रसाद आर्य
मन्त्री

—आर्य समाज हापुड़ का वार्षिकोत्सव ६ से ६ अप्रैल तक मनाया गया। ८ अप्रैल को माता लक्ष्मी देवी जी की अध्यक्षता में महिला सम्मेलन हुआ। उसमें श्रीमती शकुन्तला गोयल जी तथा अन्य बहिनों के प्रभावशाली भाषण हुए।

९ अप्रैल की रात्रि को ८ बजे आर्य समाज के प्रधान श्री ला० गंगाराम जी की अध्यक्षता में श्रीयुत पं० रामचन्द्र जी देहलवी की हीरक जयन्ती मनाई गई। पंडाल खचाखच भरा था। पंडित जी को प्राप्त हुए अनेक बधाई पत्रों के पढ़े जाने के बाद आर्य समाज हापुड़ की ओर से श्रीयुत विजयेन्द्र जी ने पं०जी को अभिनन्दन पत्र भेंट किया।

—मुम्बई प्रान्तीय आर्य धर्म परिषद. आर्य समाज बम्बई का ८२ वां वार्षिक महोत्सव, प्रांतीय आर्य सम्मेलन, आर्य समाज स्थापना दिवस तथा अन्य कतिपय सम्मेलन ३० मार्च से २ अप्रैल तक बम्बई नगर में धूमधाम से मनाये गये। बाहर से पधारने वाले वक्ताओं में श्री अयोध्याप्रसाद जी बी० ए० रिसर्च स्कालर का नाम विशेष उल्लेखनीय है। प्रान्तीय आर्य धर्म परिषद में कई प्रस्ताव

पारित हुए। नगरकीर्तन बड़ा विशाल और प्रभावशाली रहा जिसमें जन सामान्य के अतिरिक्त नगर तथा उपनगरों के सदस्य, आर्य स्त्री समाजों की सदस्याएं, आर्य वीर दल के वीर वीरांगनाओं आर्य महिलाश्रम की महिलाओं, आर्य बालाश्रम के बालक बालिकाओं तथा बाहर के प्रतिनिधियों ने विशेष रूप से भाग लिया।

—आर्य कन्या विद्यालय अलवर (राजस्थान) का ११ वां वार्षिकोत्सव ३१-३-५७ को ससमारोह सम्पन्न हुआ।

श्री जिलाधीश तथा शिक्षा निरीक्षक की अध्यक्षता में कन्याओं द्वारा व्यायाम प्रदर्शन हुआ खेल प्रतियोगिता हुई तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। जिलाधीश महोदय पाठशाला के कार्य से प्रभावित हुए। शिक्षा निरीक्षक महोदय ने बताया कि उन्हें आर्य शिक्षा संस्था का स्नातक होने का सौभाग्य प्राप्त है। उन्होंने आर्य समाज के कार्य की प्रशंसा की और पाठशाला की उन्नति में अपना योग देने का वचन दिया। जिलाधीश महोदय द्वारा पुरस्कार वितरित हुआ।

१-४-४७ को आर्य समाज अलवर तथा आर्य-स्त्री समाज अलवर ने मिलकर स्थापना दिवस मनाया। वृहत् प्रीति भोज हुआ जिसमें अस्पृश्य वर्ग को मुख्यता दी गई।

—३०-३ ५७ शनिवार को टीटागढ़ हाई स्कूल के छात्रों को श्री स्वामी जगदीश्वरानन्द जी ने यम-नियम पर उपदेश दिया। ३१-३-५७ की सायंकाल एक वदिक विवाह हुआ। वर वधू दोनों सुयोग्य हैं तथा प्रतिष्ठित आर्य कुलों के हैं। १-४-५७ को स्वामी जी के सभापतित्व में आर्य समाज कार्न वालीस स्ट्रीट कलकत्ता में आर्य समाज स्थापना दिवस मनाया गया। इस अवसर पर अनेक उत्तम भाषण हुए जिसमें श्री पं० रघुनन्दन शर्मा जी के भाषण का विशेष प्रभाव पड़ा। आर्य कन्या विद्यालय की अध्यापिकाओं और छात्राओंके सात्विक मधुर संगीत से कार्यक्रम को वरिष्ठता प्राप्त हुई।

—आर्य समाज बैरगनिया (मुजफ्फरपुर) शान्ति आश्रम लोहरदगा (रांची) में आर्य समाज स्थापना दिवस बड़े समारोह से मनाने गये।

—आर्य समाज शक्ति नगर देहली की ओर से ३१ मार्च और १ अप्रैल को आर्य समाज स्थापना दिवस मनाया गया। ३१ मार्च को सम्मिलित प्रीति भोज हुआ। १ अप्रैल की रात्रि को श्रीयुत ला० चरणदास जी पुरी एडवोकेट की अध्यक्षता में विराट सभा हुई जिसके प्रमुख वक्ता श्रीयुत ला० रामगोपाल जी मंत्री सार्वदेशिक सभा तथा श्री जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती महामन्त्री प्रान्तीय प्रतिनिधि सभा पंजाब थे। मैजिक लालटेन के प्रदर्शनों द्वारा आर्य समाज का परिचय उपस्थित किया गया। श्यामलाल

मन्त्री

—गत मार्च के अन्त में आर्य समाज गाजियाबाद का ६६ वां वार्षिकोत्सव कम्पनी बाग में ससमारोह सम्पन्न हुआ। उपस्थिति हजारों की रहती थी। श्रीयुत पं० रामचन्द्र जी देहलवी, श्री प० अमरसिंह जी आर्य पथिक, श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी तथा पं० शिवकुमार जी शास्त्री महोपदेशक आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब आदि २ महानुभावों के विशेष व्याख्यान हुए।

विजयपाल शास्त्री साहित्याचार्य

मन्त्री

—आर्य समाज पलवल (गुड़गांवा) में लेखराम वीर तृतीया का पर्व धूमधाम से मनाया गया! मूलशंकर, मन्त्री

—२१-२-५७ से २५-२-५७ तक आर्य समाज खंडवा के तत्वावधान में तथा श्री डा० रघुनाथसिंह जी वर्मा प्रधान आर्य समाज की अध्यक्षता में ऋषि बोधोत्सव बड़े समारोह के साथ मनाया गया।

रूस के दो नवयुवक आर्य समाज मथुरा में

—११-३-५७ को बनारस से आये हुए २ रूसी नवयुवकों की आर्य समाज के मन्त्री श्री विश्वनाथ

सिंह जी से भेंट हुई। ये दोनों बनारस हिन्दू विश्व विद्यालय में हिन्दी पढ़ते हैं और हिन्दी बहुत अच्छी बोलते हैं। समाज के मन्त्री जी ने उन्हें महर्षि जीवनी, संस्कार विधि, सन्ध्योपासन विधि, हवन मन्त्र आदि २ आठ पुस्तकें भेंट की। उक्त पुस्तकों को पाकर वे प्रसन्न हुए और कहा कि हमें इस प्रकार का साहित्य अभी तक नहीं मिला था। उन्होंने कहा हम देहली में सार्वदेशिक सभा और अजमेर में परोपकारिणी सभा के कार्यालयों में जायेंगे। उन्होंने वैदिक यन्त्रालय अजमेर से छपे हुए वेद का पता नोट किया। (ये नवयुवक अभी सभा कार्यालय में नहीं पधारे हैं पधारने पर भेंट का विवरण सार्वदेशिक में प्रकाशित किया जायगा--सम्पादक)

आर्य समाज नेविलगंज (इटावा) का उत्सव मार्च के अन्तिम सप्ताह में सम्पन्न हुआ। १-४-५७ को मन्त्री श्री सुरेशचन्द्र जी गुप्त के पुत्रों का मुंडन तथा कर्ण वेध संस्कार हुए। श्रीमती शकुन्तला देवी का उपनयन संस्कार हुआ।

शुद्धि

२५-३-५७ को आर्य समाज एटा में निम्न-लिखित मुसलमानों की शुद्धि हुई:--

१ अब्दुल रशीद पठान आयु ५० वर्ष
२ असगरी बेगम (पूर्व हिन्दू) आयु २५ वर्ष
३ अमीर खां (बच्चा) आयु १॥ वर्ष
४ हाजी नसीर अहमद (पूर्व ब्राह्मण आयु २८ वर्ष १४ वर्ष पूर्व मुसलमान हुआ था) हज्ज कर आया था। -सत्यदेव उपाध्याय मन्त्री

उड़ीसा में समाज स्थापना

--८-३-५७ को महीश डीह (सुन्दरगढ़ उड़ीसा) में आर्य समाज की स्थापना की गई। इस अवसर पर श्री शुकमुंडाजी, श्री पं० गंगाधर जी तथा सार्वदेशिक सभा के उपदेशक श्री जयकान्त जी के भाषण हुए। अधिकारियों का निर्वाचन हुआ। प्रधान प० गंगाधर जी मिश्र तथा मन्त्री श्री दूर्वादल नायक चुने गए।

--१५ ३।५७ की रात्रि को आठ बजे आर्य जगत के प्रसिद्ध विद्वान् श्री पूज्य स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज के शिष्य श्री पं० बुद्धदेव जी उपाध्याय का लम्बी बीमारी के बाद देहावसान हो गया। पं० जी संस्कृत के अनेक विषयों के ज्ञाता एवं वक्ता थे। मृत्यु के समय उनकी आयु ६४ वर्ष की थी।

—आर्य समाज नैनीताल (उत्तर प्रदेश) ने गर्मियों में वहां जाने वाले आर्यों के निवास स्थान की अपने मन्दिर में व्यवस्था की है। प्राथमिकता उन्हें दी जायगी जो दृढ़ आर्य होंगे और किसी आर्य समाज द्वारा प्रमाणित होंगे। कमरों का दैनिक किराया लिया जायगा। बड़े कमरे का ४) और छोटे का ३) दैनिक है, जितने समय के लिए कमरा रिजर्व कराया जायगा उतने समय का किराया एडवांस जमा करना होगा।

--आर्य समाज मेंडू तथा आर्य समाज जुवां के पदाधिकारियों का निर्वाचन इस प्रकार हुआ:—

मेंडू--प्रधान श्री किशोरी लाल
मन्त्री ,, सूर्यपालसिंह
जुवां--प्रधान श्री दलीपसिंह
मन्त्री ,, धर्मसिंह

चरित्र निर्माण आन्दोलन

श्रीयुत बा० पूर्णचन्द्र जी एडवोकेट ने ८ से २० मार्च तक मदरास प्रान्त का भ्रमण किया। कार्य विवरण इस प्रकार है :--

८ मार्च से १२ तक मनकाद में हैन्दव सम्मेलन हुआ। उसमें श्रीयुत बाबू जी के ७ भाषण हुए जिनमें चरित्र निर्माण और आर्य धर्म की विशेषता और महिमा पर प्रकाश डाला गया।

१३ मार्च को नगर कौल में, और १४ को त्रिवेन्द्रम में सार्वजनिक सभाओं में चरित्र निर्माण की आवश्यकता पर भाषण दिए गये। उपस्थिति बहुत अच्छी थी।

१३ मार्च को मदुरा पहुँच कर वहां के सार्वजनिक कार्यकर्ताओं से भेंट की गई और ईसाई प्रचार निरोध के कार्य के सम्बन्ध में विचार किया गया।

१७ से २० मार्च तक मद्रास नगर में आर्य समाज मद्रास (सेन्ट्रल) त्रिपलीकेन तथा पंजाबी एसोसियेशन के तत्वावधान में भाषण हुए। दक्षिण हिन्दी प्रचार समिति के कार्यालय को देखा गया।

स्वामी श्रद्धानन्द के प्रति श्रद्धाञ्जलि

दिल्ली में जन्म-शताब्दी समारोह

अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द की जन्म शताब्दी के उपलक्ष्य में १३अप्रैल शनिवार को करौलबाग में सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा के तत्वावधान में आयोजित एक सभा में दिल्ली के संसद सदस्य श्री राधारमण ने स्वामी जी के त्याग और बलिदान पर प्रकाश डालते हुए उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। श्री अछरूराम सभापति थे।

श्री राधारमण ने कहा कि स्वामी श्रद्धानन्द एक निर्भीक सन्यासी नेता थे जीवन भर ब्रिटिश हकूमत के अत्याचार और अन्याय का मुकाबला करते रहे। स्वामी श्रद्धानन्द न केवल धार्मिक कुरीतियों के विरुद्ध लड़ते रहे, बल्कि देश को स्वतंत्रता की लड़ाई में भी उन्होंने सबसे बड़ी आहुति दी।

श्री राधारमण ने इस मौके पर जलियांवाला बाग शहीदों का भी स्मरण किया और उनके प्रति भी अपनी श्रद्धांजलि भेंट की।

श्री अछरूराम ने अपने भाषण में कहा कि स्वामी श्रद्धानन्द जो कहते थे उसे पहले अपने जीवन में उतार कर दिखाते थे वह गुरुकुल कांगड़ी के संस्थापक थे।

डा० गोकुलचन्द नारंग ने स्वामीजी की गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की प्रशंसा की और कहा कि एक छोटा सा विद्यालय अब एक विश्व विद्यालय बन चुका है जिसके द्वारा देश की बहुत सेवा हुई है। पंजाब के लोगों के प्रति स्वामीजी की विशेष सेवाओं की उन्होंने बहुत सराहना की।

प्रो० अब्दुल मजीद ने स्वामीजी के साथ अपने परिवार का विशेष सम्बन्ध बताते हुए कहा कि स्वामीजी हिन्दू-मुसलिम एकता के प्रबल समर्थकों में थे। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की प्रशंसा करते हुए उन्होंने कहा कि उसमें चरित्र निर्माण तथा राष्ट्र-भक्ति पर विशेष बल दिया जाता है। श्रीप्रो०रामसिंह पं०बृहद्बलशास्त्री श्रीपं०धर्मवीर वेदालंकार और श्री देवराज चड्ढा ने भी स्वामीजी को श्रद्धांजलियां अर्पित कीं।

आर्य समाज के वेद प्रचार में पत्थरों की बोछाड़ें

श्री सनातन धर्म सभा रेलवे रोड गुड़गांवा के पहले वार्षिकोत्सव दिनांक १९, २०, २१, अप्रैल में पं० भीमसेन भयंकर द्वारा आर्य समाज व ऋषि दयानन्द व अन्यान्य नेताओंपर लांछन लगाये गए और आर्य समाज को शास्त्रार्थ के लिये आह्वान किया।

आर्य समाज ने उनका यह चैलेंज स्वीकार किया परन्तु दूसरे दिन सनातन धर्म सभा ने शास्त्रार्थ से इनकार कर दिया। दिनांक २२ अप्रैल अर्जुन नगर गुड़गांवा के वेदप्रचार में जो कि पं० लोकनाथ जी तर्कवाचस्पति द्वारा चल रहा था दूसरे धर्मावलम्बियों द्वारा शोर शराब किया गया। और पथराव जनता व देवियों पर किया गया जिससे कइयों को चोटें आई। परन्तु व्याख्यान का क्रम निरन्तर गति से शान्तिपूर्वक चलता रहा। अन्त में सभा प्रधान श्री ठाकुर आनन्दपाल जी ने अपने भाषण में कहा कि आर्यसमाज इन धमकियों और पथराव से भयभीत होने वाला नहीं और कि यह वेद प्रचार सप्ताह निरन्तर चलता रहेगा॥

धर्म के नाम पर
ठगी और मूर्खता

(१)

हवन करते हाथ जला

हाथरसमें हरी नेत्र चिकित्सालय में एक लाला इलाज करा रहे थे, उनकी धर्मपत्नी भी साथ ठहरी हुई थीं। एक अज्ञात व्यक्ति ने इनसे सम्पर्क बढ़ा लिया और बताया कि मेरी भी ताई की आंखों का आपरेशन हुआ है।

उक्त व्यक्ति परेशान सा आया और बोला "मेरी ताई को डाक्टर साहब ने बताया है कि वह पानी में सोना डालकर पिये तो आंखें शीघ्र अच्छी हो जायेंगी। मेरे पास सोने की कोई चीज नहीं है। यदि आप तनिक सी देर के लिये अपनी जंजीर पानी में डाल दें तो बड़ा उपकार होगा।" सेठानी पिघल गई और जंजीर गले से उतार कर दे दी। ठग, कटोरे में जंजीर डालकर नल से पानी लाने के बहाने नौ-दो ग्यारह हो गया।

(२)

भगवान के मन्दिर की चोरी

राजस्थान पुलिस ने स्थानीय गोविन्ददेव जी के मन्दिरकी सनसनीखेज चोरीका पता लगा लिया है और उसका एक तिहाई माल बरामद कर लिया गया है।

गत वर्ष १८ मार्च की रात को हुई इस चोरी के सिलसिले में गुप्तचर विभाग ने साबरमती के निकट बच्छराज नामक गांव में दो व्यक्तियों को गिरफ्तार किया तथा बाद में उनके भाग का गड़ा हुआ धन फुलेरा में बरामद किया गया। पुलिस द्वारा बरामद माल ३५ हजार रुपये की लागत का है और शेष अभियुक्त एक लाख का माल लेकर अभी फरार हैं। गोविन्ददेव जी के यहां १ लाख ३५ हजार की इस चोरी में सोने चांदी के आभूषण भी चुरा लिये गये थे।

पुलिस ने अभी जिन दो व्यक्तियों को पकड़ा है वे बाप-बेटे हैं और ये दोनों ही रामदीन व किशन चोरी व डाकेजनी के लिये कुख्यात हैं। पुलिस इंस्पेक्टर कंवर सेन ने इन्हें एक जङ्गल में छिपे हुए पकड़ा। इनसे २३५ तोला सोना व १३७ तोला चांदी बरामद की गयी। बरामद असबाब में सोने के छत्र के टुकड़े भी हैं, जिन्हें चोरों ने हिस्से करने की गरज से बांट डाला था।

राज्य सरकार ने इस चोरी का पता लगाने वाले को पांच हजार का इनाम देने की घोषणा की थी।

(३)

सोना ठग ले गए

रामराज्य परिषद् के मंत्री पं० गोवर्धननाथ मिश्र को एक सिद्ध ने १५ तोले सोने से ठग लिया।

कहा जाता है कि ४-५ दिन पहले एक साधु आया और बोला "बच्चा यह टूटा फूटा मन्दिर और मकान नया क्यों नहीं बनवा लेता ?" मिश्रजी द्वारा अपनी आर्थिक दशा बतलाने पर ठग सिद्ध ने हाथ की सफाई से कुछ साधारण करिश्मे दिखाए जिससे मिश्रजी बहुत प्रभावित हुए। इसके बाद ठग ने हांडी, घड़ा, पैसे और अन्य सामग्री मंगाकर एक ढोंग रचा एवं मिश्रजी के घर का समस्त

सुनहरी जेवर मंगवाया जिसे तोड़कर करीब १५ तोले सोना निकाला और हांडी में रखकर अग्नि दहकाई गई। पसीनेमें लथपथ ठग ने कहा "बच्चा! प्यास लगी है।" श्रद्धा के वशीभूत मिश्रजी दूध लेने चल दिए, इसी बीच कपट मुनि ने सोने पर हाथ साफ कर दिया। मिश्रजी दूध लाये, जिसे पीकर ठग ने कहा "बच्चा! प्रातःकाल अग्नि शान्त होने पर मैं स्वयं दुगना सोना निकालूंगा।" किन्तु अभी तक बाबा का कहीं पता नहीं चला है।

कुछ और लोग भी ठगे

ज्ञात हुआ है कि सिथरौली, गुमानपुर और गली कौंजड़ान (हाथरस) में भी कुछ लोग नोट दूने करने या सोना चांदी बनाने के नाम पर पिछले पखवाड़े में ठगे जा चुके हैं।

(४)

भगवान शंकर से साक्षात्कार के लिए पुजारी का बलिदान

बस्तर के आदिवासी क्षेत्र में चित्र कूट जलप्रपातसे करीब ३० मील दूर स्थित बिण्टा ग्राम से प्राप्त समाचार से ज्ञात होता है कि एक पुजारी ने भगवान् शंकर से साक्षात्कार करने के लिए अग्नि में कूद कर प्राण दे दिये। उक्त पुजारी दो ग्रामवासियों के साथ निकट के सघनबन में स्थित एक प्राचीन गुफा में शिवलिंग के दर्शनार्थ गया। उसने दोनों ग्रामवासियों की सहायता से लकड़ी एकत्रित की और उनके ढेर में आग लगा दी। अग्नि के जोर पकड़ते ही पुजारी आत्म शुद्धि के लिए भगवान शिव की स्तुति के मंत्रों का उच्चारण करते हुए धधकती ज्वाला में कूद पड़ा, और अग्नि की तेजी से जल कर तत्काल ही प्राण गंवा बैठा एवं वहां केवल मांस का लोथड़ा भर रह गया। यह सारा कार्य उतनी तेजी से हुआ कि दोनों ग्रामवासी स्तंभित से खड़े रह गए। जिस स्थान पर यह दुर्घटना हुई वहां हजारों की संख्या में लोग जा रहे हैं। पुलिस दुर्घटना की जांच कर रही है।

आर्य्य कुमार सभा किंग्सवे देहली

आर्य्य कुमार सभा किंग्ज़वे कैम्प देहली का स्थापना दिवस २४ अप्रैल को मनाया गया।

२१-४-५७ की सायंकाल ८ बजे 'जीवन सन्देश' की प्रदर्शिनी का उद्‌घाटन रेल मन्त्री माननीय जगजीवनराम जी द्वारा हुआ। उन्होंने उद्‌घाटन के पश्चात् आर्य्य कुमार सभा की बड़ी प्रशंसा की और आर्य्य कुमारों को जातपात पर ध्यान न देने की प्रेरणा की। इसके उत्तर में सार्वदेशिक सभा के उपमन्त्री श्रीयुत शिवचन्द्र जी ने कहा कि आर्य्य समाज इस विषय में अपने ढंग से प्रयत्नशील है। श्री डा० गोकुलचन्द जी नारंग ने आर्य्य कुमार सभा की ओर से रेल मन्त्री महोदय को धन्यवाद दिया।

२४ अप्रैल की सायंकाल ७ बजे आर्य्य कुमार सभा का स्थापना दिवस वीर यज्ञदत्त की अध्यक्षता में मनाया गया। वार्षिक रिपोर्ट पढ़ी गई और पुरस्कार वितरण हुआ। श्री जगदीश विद्यार्थी के योगासन के खेल हुए। श्री श्यामाचरण जी गुप्त और ला० गणेशदास जी के भाषण हुए।

(यह आर्य्य कुमार सभा एक जीवित सभा है। हम इसकी उन्नति की कामना करते हैं।)

—सम्पादक

* ओ३म् *

सार्वदेशिक प्रकाशन लिमिटेड, दरियागंज दिल्ली

* की महत्वपूर्ण योजना *

सत्यार्थ प्रकाश

को लिखे हुए यह ७५वां वर्ष है

राष्ट्र भर में
सत्यार्थ प्रकाश की
हीरक जयन्ती
मनाई जावेगी।

इस पुनीत अवसर पर
७५ हजार सत्यार्थ प्रकाश
प्रकाशित करने की
हमारी योजना

आर्य जगत् में यह सम्वाद बड़े हर्ष के साथ सुना जाएगा कि सत्यार्थप्रकाश को लिखे हुए यह ७५वाँ वर्ष है। देश भर में सत्यार्थप्रकाश की हीरक जयन्ती मनाई जाएगी। आपकी इस संस्था ने वर्ष भर में ७५ हजार सत्यार्थप्रकाश प्रकाशित करने का संकल्प किया है। इसके लिए आर्य जगत् की शिरोमणि सभा आर्य सार्वदेशिक सभा ने हमें १० हजार रुपये की सहायता प्रदान की है।

सत्यार्थप्रकाश छप रहा है, एक मास तक तय्यार होगा।

इस पुनीत अवसर पर

आर्य समाज विनय नगर नई दिल्ली द्वारा

ताम्र पत्रों पर सत्यार्थ प्रकाश

राष्ट्रपति महोदय को भेंट किया जाएगा।

इस एक पुस्तक में ५ मन वजन होगा। इस पर ३०००) तीन हजार रुपया लगेगा। ताम्र पत्र पर यह ग्रन्थ भी हम ही तय्यार करा रहे हैं।

भारत के आर्य सज्जनों और आर्य समाजों का कर्त्तव्य

है कि इस वर्ष में अपने २ क्षेत्र में सत्यार्थप्रकाश का भारी संख्या में वितरण, प्रचार और प्रसार करें। छोटी से छोटी आर्य समाज को भी कम से कम ७५ सत्यार्थप्रकाश मंगा कर प्रचार करना चाहिये। बड़ी बड़ी आर्यसमाजों को २५० और ५०० की भारी संख्या में प्रचार करना चाहिए। अपनी शक्ति के अनुसार आज ही आर्डर भेज दें।

सत्यार्थप्रकाश साधारण, बढ़िया और आर्ट पेपर पर छाप रहे हैं। हमारी लागत साधारण पर ॥।≈)॥ बढ़िया पर १-)। और आर्ट पेपर पर ३॥≈) आवेगी। कम से कम ७५ पुस्तक मंगाने पर लागत मात्र पर ही देंगे।

सत्यार्थप्रकाश के इस महायज्ञ में भाग लेना देश, धर्म और जाति की सच्ची सेवा करना है।

हमारे अत्यन्त सस्ते और नये प्रकाशन

२८—गीता में ईश्वर का स्वरूप मू० ≈)
ले० शास्त्रार्थ महारथी श्री ठा० अमरसिंह जी
२६—उपनिषद् सुधासार मू० २।) नेट १॥≈)
(श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी महाराज)
३०—बौद्धमत और वैदिक धर्म मू० १॥)
श्री पं धर्मदेव विद्यावाचस्पति नेट १=)
३१—राष्ट्र रक्षा के वैदिक साधन मू० १)
श्री स्वामी वेदानन्द जी महाराज नेट ॥।)
३२—उदारतम आचार्य दयानन्द मू० ।≈)
श्री स्वामी वेदानन्द जी महाराज नेट ।)॥
३३—वैदिक योगामृत मू० ॥≈) नेट ।≈)॥
श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी
३४—बृहदारण्यकोपनिषद् मू० ४) नेट ३)
अनु० श्री महात्मा नारायण स्वामी जी
३५—सीनेमा या सर्वनाश मू० ≈)
श्री ओ३म प्रकाश जी पुरुषार्थी
३६—प्रजा पालन मू०)॥।
(महर्षि दयानन्द द्वारा महाराजा जोधपुर उदयपुर को लिखे चार महत्वपूर्ण पत्र)

36—WISDOM OF THE RISHIS
By P. Gurudatta Vidyarthy M.A. 4/-
37—THE LIFE OF THE SPIRIT Rs. 2/-
38—TERMINOLOGY of the Vedas Rs. 1/-
39—Righteousness or unrighteousness of flesh-eating. -)
40—Origin of thought and language. =)
41—Pecunio mania ≡)
42—Man's progress downwards ≈)

१।) सैकड़ा के ट्रैक्ट

१—ऋषि की सुनो
२—खान-पान
३—ईश्वर
४—आठ की पोपजी
५—स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश
६—पुरुषार्थ करो पुरुषार्थ करो

२) सैकड़ा के ट्रैक्ट

१—आर्योद्देश्य रत्नमाला
२—स्वमन्तव्यामन्तव्य (अंग्रेजी)
३—गोहत्या और सरकार
४—वेदामृत
५—ब्रह्मचर्य साधन

अन्य पुस्तकें

१—भोज प्रबन्ध

महाराजा भोज के दरबार की महत्वपूर्ण घटनाऐं मूल्य २।) नेट १।)

२—डाक्टर वर्नियर की भारत यात्रा

औरंगजेब के शासनकाल में फ्रांस का आया डाक्टर, जिसने १६ वर्ष तक दिल्ली में रहकर मुगल साम्राज्य और भारत की दशा का वर्णन किया है मूल्य ४॥) नेट ३।≈)

३—स्वर्ग में हड़ताल

स्व० लाला देशबन्धु जी द्वारा स्वर्ग में हड़ताल और महर्षि दयानन्द की अध्यक्षता में सम्मेलन, महात्मा गांधी आदि अनेक नेताओं के भाषण और प्रस्ताव, बड़ी ही मनोरंजक। मू० ।≈) नेट ।)॥

आर्य समाजों के लिये

१—प्रवेश पत्र सैंकड़ा	॥।)
२—रसीद चन्दा एक प्रति	॥।)
३—चन्दा रजिस्टर	१)
४—सदस्य रजिस्टर	१)
५—ऋग्वेद का अन्तिम सूक्त	१।) सैंकड़ा
६—आर्य समाज के दश नियम	२) सैंकड़ा

नोट:—आर्डर भेजते समय रेलवे स्टेशन का नाम अवश्य लिखें।
२—आज डाक व्यय खर्च बहुत बढ़ा हुआ है अतः भारी संख्या में पुस्तकें रेल द्वारा मंगानी चाहिए।

सार्वदेशिक प्रेस, पटौदी हाउस, दरियागंज, दिल्ली—७

Regd No. D 51.

आर्य समाज का इतिहास

(प्रथम भाग) सचित्र

इस सभा द्वारा श्रीयुत पण्डित इन्द्र विद्यावाचस्पति कृत आर्य समाज के इतिहास का प्रथम भाग छप कर बिकने लगा है। इतिहास की भूमिका आर्य समाज के प्रसिद्ध विद्वान् तथा पंजाब सरकार के भूतपूर्व शिक्षामन्त्री श्रीयुत डा० गोकुलचन्द जी नारंग, एम० ए० पी० एच० डी० ने लिखी है। ग्रन्थ सजिल्द है जिसमें $\frac{१८ \times २२}{८}$ आकार के ३६४ पृष्ठ हैं। आकार प्रकार कागज व छपाई उत्कृष्ट है। स्थान २ पर ३२ लाइन ब्लाक दिये गये हैं।

महर्षि की जन्म तिथि, आर्य समाज स्थापना तिथि, महर्षि की मृत्यु कैसे हुई इत्यादि विवादास्पद विषयों पर परिशिष्ट रूप में मूल्यवान् सामग्री दी गई है।

प्रारम्भ से सन् १९०० ई० तक के इतिहास में आर्य समाज की स्थापना से पहले की धार्मिक तथा सामाजिक स्थिति, महर्षि दयानन्द का आगमन, आर्य समाज की स्थापना, प्रचार युग, अन्य मतों से संघर्ष, संगठन का विस्तार, संस्था युग का आरम्भ आदि विषयों का समावेश है। शैली बड़ी रोचक और चित्ताकर्षक है।

सम्पूर्ण इतिहास ३ भागों में छपेगा। दूसरा भाग प्रेस में दे दिया गया है और तीसरा भाग तैयार किया जा रहा है।

इस ग्रन्थ की सामग्री के एकत्र करने, बढ़िया से बढ़िया रूप में इसकी ५००० प्रतियां छपाने में तथा चित्रादि के देने में सभा का बहुत व्यय हुआ है। इस राशि की शीघ्र से शीघ्र प्राप्ति आवश्यक है जिससे कि वह दूसरे भाग की छपाई में काम आ सके।

सभा ने यह विशाल आयोजन प्रदेशीय सभाओं, आर्य समाजों, आर्य नर नारियों के सहयोग के भरोसे बहुत खटकने वाले अभाव की पूर्त्यर्थ किया है। अतः प्रत्येक आर्य समाज और आर्य नर नारी को इस ग्रन्थ को शीघ्र से शीघ्र अपना कर अपने सहयोग का क्रियात्मक परिचय देना चाहिये।

प्रत्येक आर्य प्रतिनिधि सभा, आर्य समाज तथा आर्य संस्था के पुस्तकालय में अनिवार्य रूप से यह ग्रन्थ रहना चाहिये। यह विषय इच्छा या पसन्द का नहीं है अपितु एक स्थायी रूप से रहने वाले ग्रन्थ के संग्रह करने का है जिससे वर्तमान ही नहीं आने वाली सन्तति को भी लाभ उठाने का अवसर मिल सके।

प्रथम भाग का मूल्य ६) है। एक प्रति का डाक व्यय रजिस्ट्री डाक से १=) अतिरिक्त होगा है। कम से कम ५ प्रतियां एक साथ मंगाने पर २०% प्रतिशत कमीशन दिया जायगा। पुस्तकों का आर्डर भेजते समय डाकखाने और निकटतम रेलवे स्टेशन का नाम स्पष्ट शब्दों में लिखा होना चाहिये।

कृपया आर्डर भेजने में शीघ्रता करें। प्राप्ति स्थान :—

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा,
श्रद्धानन्द बलिदान भवन, दिल्ली-६

चतुरसेन गुप्त द्वारा सार्वदेशिक प्रेस, पाटौदी हाउस, दरियागंज दिल्ली—७ में छपकर
रघुनाथ प्रसाद जी पाठक प्रकाशक द्वारा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली-से प्रकाशित।